









16.3









\* ओ३म् \*

# अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः तृतीयो भागः

## नामिकः

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः ।

श्रीमत्स्वादिद्यानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम् ।





\* ओ३म् \*

# अथ वेदाङ्गप्रकाशः

तत्रत्यः तृतीयो भागः

## नामिकः



पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां द्वितीयो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चमं पुस्तकम् ।

अजमेरनगरे वैदिकयन्त्रालये मुद्रितः ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है,

क्योंकि इसकी रजिस्टरी कराई गई है ।

सृष्ट्यब्दाः १,६७,२६,४६,०५६

अठवीं बार  
१०००

विक्रीय संवत् २०१३

{ मूल्य ॥३॥ }





ओ३म्

## नामिकविषयसूचीपत्रम्

विषय

पृष्ठ



उपोद्घातः—

१-५

[ अथाजन्तप्रकरणम्—

६-५८ ]

अकारान्तविषयः—

६-२१

आकारान्तविषयः—

२१-२६

इकारान्तविषयः—

२६-३६

ईकारान्तविषयः—

३६-४२

उकारान्तविषयः—

४३-४६

ऊकारान्तविषयः—

४६-४६

ऋकारान्तविषयः—

४६-५६

ऐकारान्तविषयः—

५६-५७

ओकारान्तविषयः—

५८-५८

औकारान्तविषयः—

—५८

[ अथ हलन्तप्रकरणम्—

५९-१०१ ]

चकारान्तविषयः—

५९-६२

छकारान्तविषयः—

६३-६४

जकारान्तविषयः—

६४-६७

टकारान्तविषयः—

—६८

तकारान्तविषयः—

६८-७०

## विषय

|                                  |           |
|----------------------------------|-----------|
| दकारान्तविषयः—                   | ५०        |
| नकारान्तविषयः—                   | ७१-८३     |
| पकारान्तविषयः—                   | ८३-८४     |
| भकारान्तविषयः—                   | ८४-८५     |
| रेफान्तविषयः—                    | ८५-८८     |
| वकारान्तविषयः—                   | ८८-८९     |
| शकारान्तविषयः—                   | ८९-९०     |
| सकारान्तविषयः—                   | ९०-९७     |
| षकारान्तविषयः—                   | ९७-९८     |
| हकारान्तविषयः—                   | ९८-१०१    |
| [ अथ पादादिशब्दप्रकरणम्—         | १०२-१०५ ] |
| [ अथ सर्वनामप्रकरणम्—            | १०६-१३४ ] |
| [ अथ वैदिकशब्दनियमविषयः—         | १३४-१३७ ] |
| [ अथ लिङ्गानुशासन(प्रत्यय)विषयः— | १३७-१३८ ] |

[ \* पुस्तक में ऐसा ही क्रम है अन्यथा पहले नकारान्त फिर सकारान्त होना था ॥सं०॥ ]



\* ओ३म् \*

## अथ नामिकः

यह पढ़ने पढ़ाने की व्यवस्था में प्रांचवां पुस्तक है। प्रथम 'सन्धिविषय' को पढ़ कर पश्चात् इसको पढ़ना चाहिये। 'नामिक' इसलिये इसको कहते हैं कि इसमें सुप् के साथ नाम अर्थात् संज्ञा आदि शब्दों का विधान है, और इसी हेतु से 'नाम्ना व्याख्यानो ग्रन्थो नामिकः' यह तद्धितार्थ संगत होता है, क्योंकि यहां 'नाम' शब्द से व्याख्यान अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय हुआ है। नामवाचकों को प्रयोगसिद्धि के लिये मुनिवर पाणिनिजी ने प्रातिपदिकसंज्ञा से विधान किया है।

(प्रश्न) 'प्रातिपदिकसंज्ञा' का क्या फल है?

(उत्तर) सुप्, ली और तद्धितप्रत्ययों का विधान होना।

(प्रश्न) 'सुप्' किसका नाम है?

(उत्तर) प्रथमा के एकवचन से लेके सप्तमी के बहुवचन पर्यन्त इक्कीस (२१) प्रत्ययों के सङ्घात का।

(प्रश्न) 'सुप्' के कितने अर्थ हैं?

(उत्तर) सुपां कर्म्मद्वयोऽप्यर्थाः संख्यां चैव तथा तिङाम् ॥

महाभाष्य अ० १ । पा० ४ । सू० २१ । आ० २ ॥

ये ग्यारह (११) अर्थ सुप् के हैं—कर्म्म; कर्त्ता; करण; सम्प्रदान; अपादान; सम्बन्ध; अधिकरण; और हेतु तथा एकत्व; द्वित्व; और बहुत्व।

(प्रश्न) 'शब्द' कै प्रकार के होते हैं ?

(उत्तर) 'नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटाय च तोकम् । नैगरूढिभवं हि सुसाधु ॥

महा० अ० ३ । पा० ३ । सू० १ । आ० १ ॥

तीन प्रकार के, अर्थात्—'यौगिक; रूढि; और योगरूढि'। परन्तु यास्कमुनि आदि निरुक्तकार और नैयाकरणों में शाकटायनमुनि सब शब्दों को धातु से निष्पन्न अर्थात् यौगिक और योगरूढि ही मानते, और पाणिनि आदि रूढि भी मानते हैं। परन्तु सब ऋषि मुनि वैदिक शब्दों को यौगिक और योगरूढि तथा लौकिक शब्दों में रूढि भी मानते हैं।

(प्रश्न) रूढि यौगिक, रूढि और योगरूढि इन तीन प्रकार के शब्दों के क्या २ लक्षण हैं ?

(उत्तर) 'यौगिक' उनको कहते हैं कि जो प्रकृति और प्रत्ययार्थ तथा अवयवार्थ का प्रकाश करते हैं। जैसे—हर्त्ता, हर्त्ता, दाता, अध्येता, अध्यापक, लम्बकर्ण, शस्त्रज्ञान, कालज्ञान, इत्यादि।

'रूढि' उनको कहते हैं कि जिनमें प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ न घटता हो, किन्तु ये संज्ञाशोधक हों। जैसे—खट्वा माला, शाला, इत्यादि।

'योगरूढि' उनको कहते हैं कि जो अवयवार्थ का प्रकाश करते हुए अपने योग से अन्य अर्थ में नियत हों। जैसे—दामोदर, सहोदर, पङ्कज, इत्यादि।



उक्त तीन प्रकार के शब्द नामान्तर से भी प्रसिद्ध हैं, अर्थात्—‘जाति, गुण, क्रिया, और बह्च्छाशब्द’। ‘जातिवाचक’ उनको कहते हैं कि जिनका योग आकृति और बहुत व्यक्तियों के साथ हो। जाति के दो भेद हैं—सामान्यजाति और सामान्यविशेषजाति।

‘सामान्यजाति’ उसको कहते हैं कि जिसका योग मुख्य आकृति और बहुत समान व्यक्तियों में रहता हो। जैसे—मनुष्य, पशु, पक्षी, इत्यादि। ‘सामान्यविशेषजाति’ उसको कहते हैं कि जो पदार्थ किसी में सामान्य और किसी से विशेष हो। जैसे—मनुष्यादि सामान्यजातियों में स्त्री, पुरुष इत्यादि। पशुओं में गौ, हस्ती, अश्व, इत्यादि। और पक्षियों में हंस, काक, इत्यादि।

‘गुणवाची’ शब्द वे हैं जो द्रव्य के आश्रित हों। जैसे—धर्म, अधर्म, संस्कार, शुक्ल, हरित, नील, पीत, रूप, गन्ध, स्पर्श, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, इत्यादि।

‘क्रियाशब्द’ उनको कहते हैं कि जो चेष्टा और व्यापार आदि के वाचक हों। जैसे—भवति, करोति, पचति, आस्ते, शेते, इत्यादि।

और ‘बह्च्छाशब्द’ उनको कहते हैं कि कोई मनुष्य यथावत् बोलने में असमर्थ होकर जिनका अन्यथा उच्चारण करे। जैसे—‘ऋतक’ के बोलने में ‘लृतक’ का उच्चारण करते हैं।

(प्रश्न) इन शब्दों के प्रयोग कितने भेदों से होते हैं ?

(उत्तर) स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग, इन तीनों भेदों से।

(प्रश्न) इन भेदों के लक्षण और प्रमाण क्या हैं ?

(उत्तर) स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्मृतः ।

उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम् ॥

महा० अ० ४ । पा० १ । सू० ३ । आ० १ ॥

जिसके बड़े २ लोम हों वह 'पुरुष' । जिसके स्तन और सिर के बाल बड़े २ हों वह 'स्त्री,' और जो इन दोनों के मध्यस्थ चिह्नवाला हो, वह 'नपुंसक' कहाता है ।

पुंलिङ्ग के उदाहरण, जैसे—पुरुषः, पुरुषौ, पुरुषाः, इत्यादि । स्त्रीलिङ्ग के—अम्बा, अम्बे, अम्बाः, इत्यादि । नपुंसकलिङ्ग के—नपुंसकम्, नपुंसके, नपुंसकानि, इत्यादि ।

(प्रश्न) इस प्रमाण और लक्षण से मनुष्य आदि चेतन व्यक्तियों में तो लिङ्गज्ञान होता है, परन्तु जड़ पदार्थों में नहीं, क्योंकि उनमें पुरुष, स्त्री और नपुंसक के चिह्न कुछ भी नहीं देख पड़ते हैं ।

(उत्तर) उनमें भी कचित् २ कुछ २ लिङ्गों के चिह्न देख पड़ते हैं । जैसे—भागः, भागौ, भागाः, इत्यादि । यहां 'पुंलिङ्ग' का चिह्न 'घञ्' । खट्वा, खट्वे, खट्वाः । नदी, नद्यौ, नद्यः, इत्यादि । यहां स्त्रीलिङ्ग के चिह्न 'टाप्' और 'डीप्' । ज्ञानम्, ज्ञाने, ज्ञानानि, यहां 'ल्युट्' प्रत्यय नपुंसक का चिह्न है ।

जैसे इन शब्दों में व्याकरण की रीति से प्रत्यय लिङ्ग के द्योतक दिखलाई देते हैं, वैसे सर्वत्र वेद, निरुक्त और निघण्टु आदि में निर्देश देखकर शब्दों के लिङ्गों की व्यवस्था यथावत् जाननी उचित है । क्योंकि—'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वा-  
लिङ्गस्य ॥ महा० अ० ३ । पा० १ । सू० १ । आ० १ ॥' [ ? ]



## उपोद्घातः

लिङ्गों का अनुशासन एक विशेष पुस्तक में करना योग्य नहीं है, किन्तु लिङ्गज्ञान के अर्थ वेदादि शास्त्रों का जानना सब को आवश्यक है ।

(प्रश्न.) शब्दविषय कितना है ?

(उत्तर) सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गः सरहस्या बहुधाभिन्नाः । एकशतमध्वर्युशाखाः । सुहस्रवर्त्मा सामवेदः । एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् । नवधा आथर्वणो वेदः । वाक्कोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाब्धब्दस्य प्रयोगविषयः । एतावन्तं शब्दस्य प्रयोगविषयं ननु निशम्य 'सन्त्यग्रयुक्ता' इति वचनं केवलं साहसमात्रमेव । एतस्मिन्श्चातिमहति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र तत्र निवतविषया दृश्यन्ते ॥ सहा० अ० १ । पा० १ । पदपुशाह्निके ॥

जो मनुष्य सातद्वीपयुक्त पृथिवी, तीन लोक अर्थात् नाम जन्म और स्थान, साङ्गोपाङ्ग वेद—अर्थात् एकसौ एक व्याख्यानयुक्त यजुः; हजार व्याख्यानयुक्त साम; इक्कीस व्याख्यानयुक्त ऋक्; नव व्याख्यानयुक्त अथर्ववेद; वाक्कोवाक्य—अर्थात् दर्शनशास्त्र, 'इतिहासः पुराणम्'—साम गोपथ ब्राह्मण और वैद्यक अर्थात् चरक सुश्रुत आदि, इस बहुत बड़े शब्द के विषय को देखे, सुने बिना कोई कहे कि अदृष्टशब्दों का निर्देश कहीं नहीं किया, यह उसका कहना केवल हठ और अज्ञान का भरा हुआ है । क्योंकि जो साधारणता से प्रयोगविषय देखने में नहीं आता, वह विद्वानों के देखने में विस्तीर्ण शब्दविषय में आता है ॥

# [ अथाजन्तप्रकरणम् ]

४०५-अथ शब्दालुशासनम् ॥ १ ॥ अ० १ । १ । १ ॥

यहां 'अथ' शब्द अधिकार के लिए है ।

शब्दों का अनुशासन अर्थात् उनकी शिक्षा का अधिकार किया जाता है ।

यहां से आगे क्रम से शब्दों का विषय दिखाया जायगा ॥

(प्रश्न) शब्द का लक्षण क्या है ?

४०६-उत्तर ) ओत्रोपलब्धिर्बुद्धिर्निर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ २ ॥

महा० १ । १ । २ ॥

जिसका कानों से सुनकर बोध हो, जो बुद्धि से निरन्तर ग्रहण करने के योग्य, उच्चारण से प्रकाशित, और आकाश जिसके रहने का स्थान है, वह 'शब्द' कहा जाता है ।

(प्रश्न) शब्द के कै भेद हैं ?

(उत्तर) चार, अर्थात्-नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ॥ इन चारों में से नाम शब्दों का व्याख्यान इस ग्रन्थ में किया जायगा ।

(प्रश्न) नामवाचक कौन शब्द हैं ?

४०७-(उत्तर) सत्त्वप्रधानानि नामानि ॥ ३ ॥ निर० १ । १ ॥



जो मुख्यता से सत्त्वप्रधान अर्थात् द्रव्य और गुणों के वाचक शब्द हैं, उनको 'नाम' कहते हैं।

जैसे—गौः, अश्वः, पुरुषः, इत्यादि।

(प्रश्न) व्याकरण में कैसे २ शब्दों का विधान किया जाता है ?

४०८—(उत्तर) समर्थ पदविधिः ॥ ४ ॥

अ० २।१।१ ॥

पदविधि समर्थ के आश्रित होती है। 'समर्थ' अर्थात् जिसके साथ जिसकी योग्यता हो, उसी के साथ उसका पदकार्य होता है।

जैसे—'भू+तव्यत्' यहां धातुसंज्ञा के बिना 'भू' शब्द अर्थविधान में असमर्थ तथा 'तव्यत्' यह कृत् और प्रत्ययसंज्ञा के बिना विधान होने ही में असमर्थ है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। तथा जिस पद के साथ जिसकी योग्यता हो, उसी से उसका समास होता है।

व्याकरण में सब सूत्रों से प्रथम इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है, तत्पश्चात् सुबन्त विषय में प्रातिपदिकसंज्ञा होती है ॥

प्रातिपदिकसंज्ञाविधायक सूत्र—

४०९—अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥ ५ ॥

अ० १।२।४५ ॥

यहां 'अर्थवत्' शब्द में 'मतुप्' प्रत्यय नित्ययोग्य में किया है, क्योंकि शब्द और अर्थ का सनातन सम्बन्ध है।

केवल धातु और प्रत्यय से पृथक् अर्थवान् शब्द, वह प्रातिपदिकसंज्ञक हो।

जैसे—धन, वन, इत्यादि ॥

४१०-कृत्तद्धितसमासाश्च ॥६॥ अ० १ । २ । ४६ ॥

कृदन्त, तद्धितान्त और समास भी प्रातिपदिकसंज्ञक हों ।

जैसे—कृदन्त में—‘अधीङ्+तृच्’, तद्धित में—‘उपगु+अण्’,  
समास में—‘राजन्+ङ्सं+पुरुष+सु’ इत्यादि अव्युत्पन्न व्युत्पन्न  
धोनों पक्षों में उक्त सूत्रों से प्रातिपदिक संज्ञा होती है ॥

४११-ङ्यप्प्रातिपदिकात् ॥७॥ अ० ४ । १ । १ ॥

यह अधिकारसूत्र है ।

ङ्यन्त, आवन्त और प्रातिपदिक से स्वादिक, स्त्रीवाचक  
और तद्धितप्रत्यय होते हैं ॥

उनमें से ‘स्वादिक’ प्रत्यय यथा—

४१२-स्त्रौलसमौड्ढष्टाभ्यांभिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङ-  
सिभ्याम्भ्यस्ङसोसांङ्योस्सुप् ॥ ८ ॥ अ० ४ । १ । २ ॥

ङ्यन्त, आवन्त और प्रातिपदिक से ‘सु’ आदि इक्कीस (२१)  
प्रत्यय हों ॥

४१३-सुपः ॥ ९ ॥ अ० १ । ४ । १०२ ॥

सुप् प्रत्याहार के जो तीन २ वचन हैं, वे एक २ के प्रति  
एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञक हों ॥

४१४-विभक्तिश्च ॥ १० ॥ अ० १ । ४ । १०३ ॥

तिङ् और सुप् के जो तीन २ वचन हैं, वे विभक्तिसंज्ञक हों ॥

१. इन्हीं प्रत्ययों के प्रथम ‘सु’ से लेकर अन्त ‘प्’ पर्यन्त का ‘सुप्’  
प्रत्याहार है ॥



अब यथाक्रम से विभक्तियों के रूप लिखते हैं—

| ० चिह्न | प्रथमा | द्वितीया | तृतीया | चतुर्थी | पञ्चमी | षष्ठी | सप्तमी |
|---------|--------|----------|--------|---------|--------|-------|--------|
| एकवचन   | सु     | अम्      | टा     | डे      | डसि    | डस्   | डि     |
| द्विवचन | औ      | औट्      | भ्याम् | भ्याम्  | भ्याम् | ओस्   | ओस्    |
| बहुवचन  | जस्    | शस्      | भिस    | भ्यस्   | भ्यस्  | आम्   | सुप्   |

इस प्रकार से सातों विभक्तियों के अलग २ रूप जान लेना चाहिये ॥

४१५-द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने ॥ ११ ॥

अ० १।४।२२ ॥

दो पदार्थों के कहने की इच्छा हो, तो द्विवचन और एक पदार्थ के कहने की इच्छा हो, तो एकवचन हो ।

जैसे—पुरुष+सु; 'पुरुष+औ' ॥

४१६-बहुषु बहुवचनम् ॥ १२ ॥ अ० १।४।२१ ॥

बहुत पदार्थों की कहने की इच्छा हो, तो बहुवचन हो ।

जैसे—'पुरुष+सु; पुरुष+औ; पुरुष+जस्' ॥

इनमें से प्रथम—'पुरुष+सु' इसका साधन, जैसे—

४१७-उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ १३ ॥

अ० १।३।२ ॥

जो उपदेश में अनुनासिक अच् है वह इत्संज्ञक हो ।

‘उपदेश’ यहां उसको कहते हैं कि धातु, सूत्र और गणों में प्राणिन्यादि मुनियों का प्रत्यक्ष कथन है। इस सूत्र से ‘सु’ इसके ‘उकार’ की इत्संज्ञा होकर—

४१८-तस्य लोपः ॥ १४ ॥ अ० १।३।६ ॥

जिसकी इत्संज्ञा हुई हो, उसका लोप हो।

लोप होकर—‘पुरुष+स्’ इस अवस्था में—

४१९-सुप्तिङन्तं पदम् ॥ १५ ॥ अ० १।४।१४ ॥

जिसके अन्त में सुप् वा तिङ् हो, उस समुदाय की पदसंज्ञा हो।

इससे ‘सु’ और ‘तिप्’ आदि प्रत्ययान्त शब्दों की पदसंज्ञा होती है। तिङन्तों की व्याख्या ‘आख्यातिक’ में लिखी जायगी ॥

‘पुरुष+स्’ इसकी पदसंज्ञा होकर, पश्चात्—

४२०-ससंजुषो रुः ॥ १६ ॥ अ० ८।२।६६ ॥

सकारान्त पद और संजुष् शब्द के स् और ष को रु आदेश हो।

‘पुरुष+रु’ इस अवस्था में ‘रु’ के उकार की इत्संज्ञा होकर लोप हो गया—‘पुरुष+स् ॥

४२१-विरामोऽवसानम् ॥ १७ ॥ अ० १।४।१०६ ॥

१. इत्संज्ञा—(उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ १।३।२) नामिक—१३ ॥

२. लोपः—(तस्य लोपः ॥ १।३।६) नामिक—१४ ॥



वक्ता की उक्ति का जो विराम अर्थात् ठहरना है, उसकी अवसानसंज्ञा हो ।

० जैसे—‘पुरुष+र्’ इससे रेफ की अवसानसंज्ञा हुई ॥

अवसानसंज्ञा का फल—

४२२—खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ १८ ॥

अ० ८ । ३ । १५ ॥

० खर्प्रत्याहार रेफ से परे हो, तो [तथा] अक्सान में रेफ को विसर्जनीय आदेश हो पदान्त में ।

इससे रेफ के स्थान में विसर्जनीय हो के—पुरुषः ॥

अथ प्रथमा विभक्ति का द्विवचन—‘पुरुष+औ’ इस अवस्था में पूर्व पर को वृद्धिप्रादेश होकर—पुरुषौ सिद्ध हुआ ॥

प्रथमा विभक्ति की बहुवचन—‘पुरुष+ज्’ इस अवस्था में—

४२३—चुटू ॥ १९ ॥ अ० १ । ३ । ७ ॥

जो प्रत्यय के आदि में चवर्ग और टवर्ग हों, तो उनकी इत्संज्ञा हो ।

इससे ‘जकार’ की इत्संज्ञा होकर लोप होगया ।

‘पुरुष+अस्’ इस अवस्था में—

० ४२४—न विभक्तौ तुस्माः ॥ २० ॥ अ० १ । ३ । ४ ॥

जो विभक्तियों के अन्त में तवर्ग, स् और म् हैं, उनकी इत्संज्ञा न हो ।

१. वृद्धिप्रादेशः—(वृद्धिरेचि ॥ ६ । १ । ५८) सन्धि—१३७ ॥

इससे 'पुरुष+अस्' यहां अन्त के सकार की इत्संज्ञा न हुई। अब इस अवस्था में—

४२५—प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ २१ ॥ अ० ६।१।१०१ ॥

जो अक् प्रत्याहार से परे प्रथमा और द्वितीया का अच् हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो।

जैसे—'पुरुषास्'। रुत्व, विसर्जनीय होकर—पुरुषाः ॥

अब द्वितीया विभक्ति का एकवचन—'पुरुष+अम्' इस अवस्था में—

४२६—अग्नि पूर्वः ॥ २२ ॥ अ० ६।१।१०३ ॥ ३॥

अक् प्रत्याहार से अम् का अच् परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्णरूप एकादेश हो।

जैसे—पुरुषम् ॥

द्वितीया का द्विवचन—'पुरुष+औद्' यहां टकार की इत्संज्ञा और लोप तथा अकार औकार को वृद्धि एकादेश होकर—पुरुषौ हुआ ॥

द्वितीया का बहुवचन—'पुरुष+शस्' इस अवस्था में—

४२७—लशक्तद्धिते ॥ २३ ॥ अ० १।३।८ ॥

तद्धित से अन्यत्र प्रत्यय के आदि जो लकार, शकार और कवर्ग, उनकी इत्संज्ञा हो।

इससे इत्संज्ञक शकार का लोप हो गया। जैसे—'पुरुष+अस्'। इस अवस्था में पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो के—'पुरुषा+स्'।

१. इसमें टकार अनुबन्ध सुट् प्रत्याहार के लिये है ॥



४२८-तस्माच्छसो नः पुंसि ॥२४॥ अ० ६।१।१०४॥

किये हुए पूर्वसवर्ण दीर्घएकादेश से परे 'शस्' प्रत्यय के 'स'कार को नकार आदेश हो।

जैसे—पुरुषान् ॥

अब तृतीया विभक्ति का एकवचन—'पुरुष+टा' इस अवस्था में—

४२९-टाडसिङ्सामिनात्स्याः ॥२५॥ अ० ७।१।१२॥

अदन्त अङ्ग से परे टा, ड्सि, डस् के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य ये तीन आदेश हों।

जैसे—'पुरुष+इन'। अब पूर्व पर को गुण' एकादेश होकर—पुरुषेन।

४३०-अदकुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ॥२६॥

अ० ८।४।२॥

एकपद में अट् प्रत्याहार, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् इनके व्यवधान में भी जो रेफ् और षकार से परे नकार हो, तो उसके स्थान में एकारादेश हो।

जैसे—पुरुषेण ॥

तृतीया विभक्ति का द्विवचन—'पुरुष+भ्याम्' इस अवस्था में—

४३१-यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् ॥२७॥

अ० १।४।१३॥

१. गुणः—( आद्गुणः ॥ ६।१।८७ ) सन्धि०—१३६ ॥

षष्ठी का एकवचन—‘पुरुष+ङस्’ इसके स्थान में उक्तसूत्र (२५) से ‘स्य’ आदेश होकर—पुरुषस्य ॥

द्विवचन—‘पुरुष+ओस्’—

४३७—ओसि च ॥ ३३ ॥ अ० ७।३।१०४ ॥

ओस् विभक्ति परे हो, तो अकारान्त अङ्ग को एकार आदेश हो।

इससे ‘पुरुष’ के अन्त्य अकार को एकार होकर—‘पुरुषे+ओस्’ हुआ। एकार को अय् और सकार को रुत्व, विसर्जनीय होकर—पुरुषयोः ॥

बहुवचन आम्—‘पुरुष+आम्’—

४३८—हस्तनद्यापो नुद् ॥ ३४ ॥ अ० ७।१।५४ ॥

ह्रस्व स्वर, नदीसंज्ञक ईकारान्त ऊकारान्त, और अकारान्त से परे आम् को नुद् का आगम हो।

टित्व धर्म से आम् के आदि में नुद् हुआ। जैसे—‘पुरुष+नुद्+आम्’। इस अवस्था में उकार और टकार की इत्संज्ञा और लोप होकर—‘पुरुष+न्+आम्’। आकार में नकार मिल के—‘पुरुष नाम्’।

४३९—नामि ॥ ३५ ॥ अ० ६।४।३ ॥

१. टित्व आदि में—(आद्यन्तौ टकितौ ॥ १।१।४५) सन्धि—  
न० इससे हुआ ॥

२. उकारेत्संज्ञा—(उपदेशेऽजनुनासिक इत् ॥ १।३।२) नामिक—  
१३ ॥ टकारेत्संज्ञा—(हलन्त्यम् ॥ १।३।३) सन्धि—१६ ॥



नाम् अर्थात् जो षष्ठी का बहुवचन नुद् सहित आम् परे हो, तो अजन्त अङ्ग को दीर्घादेश हो।

जैसे—पुरुषानाम्, यहां नकार को एकार होके—पुरुषाणाम् ॥

सप्तमी का एकवचन—ङि—‘पुरुष+ङि’ ङ् की इत्संज्ञा और लोप होकर अकार और इकार के स्थान में गुण एकादेश एकार हुआ—पुरुषे ॥

द्विवचन—‘पुरुष+ओस्’ पूर्ववत् एकार, अय् और स् को कृत्, विसर्जनीय होके—पुरुषयोः ॥

सप्तमी का बहुवचन—सुप्—‘पुरुष+सुप्’ अन्त्य हल् पकार की इत्संज्ञा और पूर्ववत् एकार होकर—‘पुरुषे+सु’ इस अवस्था में—

४४०—आदेशप्रत्यययोः ॥ ३६ ॥ अ० ८। ३। ५३ ॥

इणप्रत्याहार और कवर्ग से परे आदेश और प्रत्यय के सकार को मूर्द्धन्य अर्थात् षकार आदेश हो।

जैसे—पुरुषेषु ॥

४४१—सम्बोधने च ॥ ३७ ॥ अ० २। ३। ४७ ॥

सम्बोधन अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति हो।

१. शकार—(अट्कुप्वाङ्लुस्यवायेऽपि ॥ ८। ४। २) नामिक—२६ ॥

२. ङ् की इत्संज्ञा—(लशक्तद्धिते ॥ १। ३। ८) नामिक—२३ ॥

३. अय्—(युचोऽयवायावः ॥ ६। १। ७८) सन्धि—१७६ ॥

४. ‘सम्बोधन’—अत्यन्त चेताने को कहते हैं ॥

प्रातिपदिकार्थ से संबोधन अर्थ अधिक होने से पूर्वसूत्र से प्रथमा<sup>१</sup> विभक्ति प्राप्त न थी, इसलिये यह सूत्र कहा ।

४४२-सामन्त्रितम् ॥ ३८ ॥ अ० २ । ३ । ४८ ॥

सम्बोधन में जो प्रथमा तदन्त शब्दस्वरूप आमन्त्रित संज्ञक हो

४४३-एकवचनं सम्बुद्धिः ॥ ३९ ॥ अ० २ । ३ । ४९ ॥

आमन्त्रित प्रथमा विभक्ति के एकवचन की सम्बुद्धि संज्ञा हो ।

जैसे—‘पुरुष+सु’ उकार की इत्संज्ञा होके ‘पुरुष स्’ इस अवस्था में—

४४४-एङ्हस्वात्सम्बुद्धेः ॥ ४० ॥ अ० ६ । १ । ६६ ॥

जो एङन्त<sup>१</sup> और ह्रस्वान्त प्रातिपदिक से परे सम्बुद्धि का हल् हो तो उसका लोप हो ।

संबोधन अर्थ दिखाने के लिये—हे; है; अङ्ग; भोम्; ओ; इत्यादिक शब्द भी संबोधन प्रथमान्त शब्द के साथ रहते हैं । जैसे—हे पुरुष । हे पुरुषौ । हे पुरुषाः । वा—पुरुष । पुरुषौ । पुरुषाः<sup>२</sup> ॥

इसी प्रकार परमेश्वर; शिव; कृष्ण; वृक्ष; घट; पट; ग्रन्थ;

१. ( प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ॥ २ । ३ । ४६ )

२. पुरुषः पुरुषौ, पुरुषाः । पुरुषम्, पुरुषौ, पुरुषान् । पुरुषेण, पुरुषाभ्याम्, पुरुषैः । पुरुषाय, पुरुषाभ्याम्, पुरुषेभ्यः । पुरुषात्, पुरुषाभ्याम्, पुरुषेभ्यः । पुरुषस्थ, पुरुषयोः, पुरुषाणाम् । पुरुषे, पुरुषयोः, पुरुषेषु । हे पुरुष, हे पुरुषौ, हे पुरुषाः ॥



वेदे; न्याय; धम्म; अर्थ; काम; मोक्ष; व्यवहार; परमार्थ, इत्यादि अकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप जानने चाहिये ॥

अकारान्त नियतनपुंसकलिङ्ग धन शब्द—

‘धन’ शब्द को पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञा आदि कार्य होकर—‘धन+सु’ इस अवस्था में—

४४५—अतोऽम् ॥ ४१ ॥ अ० ७।१।२४ ॥

अकारान्त अङ्ग [नपुंसक लिङ्ग] से परे सु और अम् विभक्तियों के स्थान में अम् आदेश हो ।

इस अम् करने का यही प्रयोजन है कि सु और अम् का लुक् पाता है, सो न हो—धनम् ॥

‘धन+औ’—

४४६—नपुंसकाच्च ॥ ४२ ॥ अ० ७।१।१६ ॥

जो नपुंसकलिङ्ग से परे औङ् हो, तो उसके स्थान में शी आदेश हो ।

जैसे—‘धन+शी’ । श की इत्संज्ञा हो के—‘धन+ई’ इस अवस्था में (आद्गुणः ॥ ६।१।८७) इस सूत्र से गुण होके—धने ॥

‘धन+जस्’—

४४७—जश्शस्त्रोः शिः ॥ ४३ ॥ अ० ७।१।२० ॥

१. (स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७।१।२३) नामिक—७२ इस सूत्र से लुक् प्राप्त था ॥

२. ‘औङ्’ यह प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन की सूचना है ॥

जो अकारान्त नपुंसकलिङ्ग प्रातिपदिक से परे जस् और शस् विभक्ति हों, तो उनके स्थान में शि आदेश हो ।

जैसे—‘धन+शि’ ।

४४८—शि सर्वनामस्थानम् ॥ ४४ ॥ अ० १ । १ । ४१ ।

शि सर्वनामस्थानसंज्ञक हो ।

शकार की इत्संज्ञा होके—‘धन+इ’ इस अवस्था में ‘गुण’ प्राप्त हुआ, उसको बाध के—

४४९—नपुंसकस्य भलचः ॥ ४५ ॥ अ० ७ । १ । ७२ ।

जो सर्वनामस्थान परे हो, तो भलन्त और अजन्त नपुंसकलिङ्ग को नुम् का आगम हो ।

‘धन+नुम्+इ’ यहां मकार और उकार की इत्संज्ञा होके—‘धन+नि’ ऐसा हुआ । इस अवस्था में—

४५०—सर्वनामस्थाने चांसम्बुद्धौ ॥ ४६ ॥

अ० ६ । ४ । ८८ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो नकारान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो ।

इस ‘धन’ शब्द के अन्त को दीर्घ हो के—धनानि ॥

‘धन+अम्’ यहां अम् विभक्ति का लुक् नहीं होता है, किन्तु उसके स्थान में पूर्ववत् अम् आदेश होके प्रथमाविभक्ति के तुल्य—धनम् । धने । धनानि ॥

तृतीया विभक्ति से लेकर सब विभक्तियों में ‘पुरुष’ शब्द के

१. गुणः—( आदगुणः ॥ ६ । १ । ८७ ) सन्धि०—१३६ ॥



समान प्रयोग समझना चाहिए । जैसे—धनेन । धनाभ्याम् । धनैः । धनाय । धनाभ्याम् । धनेभ्यः । धनात् । धनाभ्याम् । धनेभ्यः । धनस्य । धनयोः । धनानाम् । धने । धनयोः । धनेषु । संबोधन चेतन ही में घट सकता है, इसलिये इसके संबोधन में प्रयोग नहीं बनते ॥

ब्रह्म; शस्त्र; पात्र; बल; वन; जल; सलिल; गृह, इत्यादि नियत नपुंसकलिङ्गों के भी रूप 'धन' शब्द के समान जानना चाहिए ॥

अकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द कोई भी नहीं है, क्योंकि स्त्रीलिङ्ग में अकारान्त से टाप् वा डीप् आदि प्रत्यय हो जाते हैं ॥

जो अकारान्त धर्म शब्द पुल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में है, उसके रूप भी पुरुष और धन शब्द के समान जानना चाहिये । जैसे—धर्मः । धर्मो । धर्माः । धर्मम् । धर्मैः । धर्मान् । धर्मेण । धर्माभ्याम् । धर्मैः । धर्माय । धर्माभ्याम् । धर्मेभ्यः । धर्मात् । धर्माभ्याम् । धर्मेभ्यः । धर्मस्य । धर्मयोः । धर्माणाम् । धर्मैः । धर्मयोः । धर्मेषु ।

नपुंसकलिङ्ग में—धर्मम् । धर्मे । धर्माणि । धर्मम् । धर्मे । धर्माणि, इत्यादि ॥

अथ आकारान्तविषयः ॥

आकारान्त सोमपा शब्द—

'सोम' ओषधियों के रस को कहते हैं, उसको जो पिये वा उसकी रक्षा करे उसका नाम 'सोमपा' है । यह 'सोमपा' शब्द विशेष के अनुसार तीनों लिङ्गों में होता है । जैसे—सोमपाः परिंडतः; सोमपा स्त्री; सोमपं कुलम् ।

उनमें से प्रथम पुँल्लिङ्ग, जैसे—‘सोमपा+सु’ इत्संज्ञा और विसर्जनीय होके—सोमपाः । ‘सोमपा+औ’ वृद्धि एकादेश होके—सोमपौ । ‘सोमपा+जस्’ जकार की इत्संज्ञा और लोप तथा सकार को विसर्जनीय और एकादेश होके—सोमपाः ॥

यहां एकवचन और बहुवचन में भेद तभी होगा कि जब इसके साथ विशेषवाची का निर्देश किया जायगा । जैसे—सोमपाः परिडतः । सोमपाः परिडताः ।

‘सोमपा+अम्’ पूर्वसूच्य एकादेश, होके—सोमपाम् । सोमपौ—पूर्ववत् ॥

‘सोमपा+शस्’ इस अवस्था में—

४५१—यचि भम् ॥ ४७ ॥ अ० १ । ४ । १८ ॥

यादि अजादि, सर्वनामस्थानभिन्न कप्प्रत्ययावधि’ स्वादि प्रत्यय परे हों, तो पूर्व की भसंज्ञा हो ।

४५२—आतो धातोः ॥ ४८ ॥ अ० ६ । ४ । १४३ ॥

भसंज्ञक आकारान्त धातु का लोप हो ।

जो आदेश सामान्य से विधान किया जाता है, वह (अलोऽन्त्यस्य ॥ १ । २ । ५१) इस परिभाषाबल से अन्त्य वर्ण के स्थान में समझना चाहिये । ‘सोमपा’ शब्द में ‘पा’ आकारान्त धातु है, इसके अन्त्य आकार का लोप होके—सोमपाः ॥

१. कप्प्रत्ययावधि पञ्चमाध्याय के (उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ ५ । ४ । १५१) इस सूत्र तक प्रत्यय लेना चाहिये ॥



सोमपा। सोमपाभ्याम्। सोमपाभिः। सोमपे। सोमपाभ्याम्।  
 सोमपाभ्यः। सोमपः। सोमपाभ्याम्। सोमपाभ्यः। सोमपः।  
 सोमपोः। सोमपाम्। सोमपि। सोमपोः। सोमपासु। संबोधन  
 में कुछ विशेष नहीं—हे सोमपा। हे सोमपौ। हे सोमपाः॥

स्त्रीलिङ्ग में भी 'सोमपा' शब्द के प्रयोग ऐसे ही होते हैं।  
 परन्तु नपुंसकलिङ्ग में भी कुछ विशेषता है—'सोमपा+सु' इस  
 अवस्था में—

४५३—ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ ४९ ॥

अ० १।२।४७ ॥

जो नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान अजन्त प्रातिपदिक है, उसको  
 ह्रस्वदेश हो।

जैसे—'सोमपा+सु'। अब सब विभक्तियों में 'धन' शब्द के  
 समान सब कार्य समझना चाहिये। जैसे—सोमपम्। सोमपे।  
 सोमपानि। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। सोमपेन। सोमपा-  
 भ्याम्। सोमपैः। सोमपाय। सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपात्।  
 सोमपाभ्याम्। सोमपेभ्यः। सोमपस्य। सोमपयोः। सोमपानाम्।  
 सोमपे। सोमपयोः। सोमपेषु ॥

इसी प्रकार—गोजा; प्रथमजा; गोषा; कूपखा; दधिक्रा;  
 आज्यपा; कीलालपा, इत्यादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिङ्गों  
 में समझना चाहिये ॥

आकारान्त कन्या शब्द—

'कन्या+सु' इस अवस्था में—

४५४—हल्ङ्यान्भ्यो दीर्घात्सुतिस्त्विष्टं हल् ॥ ५० ॥

अ० ६।१।६८ ॥

हलन्त और दीर्घ डीप्, डीष्, डीन्, टाप्, डाप् चाप्  
जिनके अन्त में हों, उनसे परे जो सु, ति, सि इनका अपूर्  
हन् उसका लोप हो ।

जैसे—कन्या ॥

‘कन्या+औ’ इस अवस्था में—

४५५—औड आपः ॥ ५१ ॥ अ० ७।१।१८ ॥

जो आवन्त अङ्ग से परे औड् हो, तो उसको शी आदेश  
हो । शकार की इत्संज्ञा और गुण होके—कन्ये ॥

‘कन्या+जस्’ जकार की इत्संज्ञा, पूर्वसवर्ण दीर्घ, एकादेश,  
रुत्व, विसर्जनीय होके—कन्याः ॥

‘कन्या+अम्’ पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होके—कन्याम् ॥

‘कन्या+औट्’ पूर्ववत्—कन्ये ॥

‘कन्या+शस्’ शकार की इत्संज्ञा, पूर्वसवर्णदीर्घ, रुत्व और  
विसर्जनीय होके—कन्याः ॥

‘कन्या+टा’ इस अवस्था में—

४५६—आडि चापः ॥ ५२ ॥ अ० ७।३।१०५ ॥

आवन्त अङ्ग से परे टा विभक्ति हो तो उसको एकार हो ।

जैसे—‘कन्ये+टा’ टकार की इत्संज्ञा होके—‘कन्ये+त्रा’  
इस अवस्था में अय् आदेश होकर—कन्यया ॥

कन्याभ्याम् । कन्याभिः ॥

‘कन्या+डे’ इस अवस्था में—

१. ‘औड्’ यह प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन की सूचना है ॥



४५७—याडापः ॥ ५३ ॥ अ० ७ । ३ । ११३ ॥

आवन्त अङ्ग, से परे डित् प्रत्यय को याद का आंगम हो ।  
जैसे—‘कन्या+याट्+ङे’ टकार, डंकार की इत्संज्ञा और लोप तथा इससे वृद्धिएकादेश होके—कन्यायै ॥

कन्याभ्याम् । कन्याभ्यः । कन्यायाः । कन्याभ्याम् । कन्याभ्यः ।  
कन्यायाः । ‘कन्या+ओस्’ यहां एकार आदेश, अय्, रुत्व और विसर्जनीय होके—कन्ययोः । ‘कन्या+आम्’=कन्यानाम् ॥

‘कन्या+याट्+ङि’ इस अवस्था में—

४५८—डेराभ्याम्नीभ्यः ॥ ५४ ॥ अ० ७ । ३ । ११६ ॥

अवन्त, नदीसंज्ञक और नी इन अङ्गों से परे डि के स्थान में आम् आदेश हो ।

जैसे—‘कन्याया+आम्’ यहां दीर्घएकादेश होके—कन्यायाम् ॥  
कन्ययोः । कन्यासु ॥

संयोधन में इतना विशेष है कि—‘कन्या+सु’ मूर्धवत्, सकृत् का लोप होके—एक कन्या । के लोप

४५९—सम्बुद्धौ च ॥ ५५ ॥ अ० ७ । ३ । १०६ ॥

सम्बुद्धि परे हो तो आवन्त अङ्ग को एकार आदेश हो ।

जैसे—हे कन्ये । हे कन्ये । हे कन्याः ॥

१. ( हस्त्रनद्यापो नुट् ॥ ७ । १ । ५४ ) नामिक—३४, इससे नुट् होगया ॥

२. कन्या, कन्ये, कन्याः । कन्याम्, कन्ये, कन्याः । कन्याभिः, कन्याभ्याम् । कन्याभिः । कन्यायै, कन्याभ्याम्, कन्याभ्यः । कन्यायाः, कन्याभ्याम्, कन्याभ्यः । कन्यायाः, कन्ययोः, कन्यानाम् । कन्यायाम्, कन्ययोः, कन्यासु । हे कन्ये, हे कन्ये, हे कन्याः ॥

इसी प्रकार—प्रजा; जाया; छाया; माया; मेधा; अर्जा  
इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के प्रयोग जानना चाहिये ॥  
परन्तु जरा शब्द में कुछ विशेष है—

४६०-जराया जरसन्यतरस्याम् ॥ ५६ ॥

अ० ७।२।१०१ ॥

अजादि विभक्तियों के परे जरा शब्द को जरस् आदेश हो  
विकल्प करके ।

जरा । जरसौ; जरे । जरसः; जराः, इत्यादि ॥

अथ इकारान्तविषयः ॥

इकारान्त नियतपुंलिङ्ग अग्नि शब्द—

पूर्ववत् सब कार्य होकर-अग्निः । 'अग्नि+औ' यहां  
पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश ईकार होके—अग्नी ॥

'अग्नि+जस्' इस अवस्था में जकार की इत्संज्ञा होके—

४६१-जसि च ॥ ५७ ॥ अ० ७।३।१०६ ॥

जो जस् प्रत्यय के परे पूर्व ह्रस्वान्त अङ्ग हो, तो उसको  
गुण हो ।

इससे इकार को एकार गुण और एकार को 'अय्' आदेश  
होकर—अग्नयः ॥

४६२-वा०-जसादिषु छन्दसि दावचनं प्राङ् णौ  
चङ्युपधाया ॥ ५८ ॥ अ० ७।३।१०६ ॥

१. पूर्वसवर्ण०—(प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ ६।१।१०१)  
नामिक—२१ ॥



जस् आदि विभक्तियों में इस प्रकरण में जो कार्य कहे हैं, वे वेद में विकल्प करके हों।

जैसे—गुण का विकल्प—अग्नयः; अग्न्यः<sup>१</sup>। शतक्रतवः; शतक्रत्वः<sup>२</sup> पशवे; पश्वे ॥

‘अग्नि+अम्’ यहां (अमि पूर्वः ॥६॥ १। १०६) इस सूत्र से पूर्वरूप हो के—अग्निम्। ‘अग्नि+औ’ पूर्ववत्—अग्नी। ‘अग्नि+शस्’ पूर्वसवर्णदीर्घ और सकार को नकारादेश होके—अग्नीन् ॥

‘अग्नि+टा’—

४६३—शेषो घ्यसखि ॥ ५६ ॥ अ० १। ४। ७ ॥

शेष अर्थात् जिनकी नदी संज्ञा न हो ऐसे जो ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द हैं, उनकी घिसंज्ञा हो।

इससे अग्नि शब्द की घि संज्ञा होके—

४६४—आडो नास्त्रियाम् ॥ ६० ॥ अ० ७। ३। १२० ॥

जो घिसंज्ञक अङ्ग से परे आड् अर्थात् टा विभक्ति हो, तो उसके स्थान में ना आदेश हो, स्त्रीलिङ्ग में न हो।

अग्निना ॥

अग्निभ्याम्। अग्निभिः ॥

‘अग्नि+ङे’—

४६५—घेर्ङिति ॥ ६१ ॥ अ० ७। ३। १११ ॥

१. जहां गुण नहीं होता है, वहां (इको यणचि ॥ ६। १। ७७)

सन्धि०—१७८ इससे यण् आदेश होजाता है ॥

ङित्प्रत्यय परे हो, तो घ्यन्त अङ्ग को गुणादेश हो ।

उसको 'अव्' आदेश होके—अग्नये ॥

अग्निभ्याम् । अग्निभ्यः ॥

'अग्नि+ङसि' उकार की इत्संज्ञा और इकार को गुण हो के—'अग्ने+अस्' इस अवस्था में—

४६६—ङसिङसोश्च ॥ ६२ ॥ अ० ६ । १ । १०६ ॥

जो पदान्त एङ् से परे ङस् सम्बन्धी अकार हो, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो ।

जैसे—अग्नेः ॥

अग्निभ्याम् । अग्निभ्यः । अग्नेः । 'अग्नि+ओस्' यहां य आदेश हो गया—अग्न्योः । 'अग्नि+आम्' यहां नुद् और दीर्घ होकर—अग्नीनाम् सिद्ध हुआ ॥

'अग्नि+ङि' इस अवस्था में—

४६७—अच्छ घेः ॥ ६३ ॥ अ० ७ । ३ । ११६ ॥

जो घिसंज्ञक इकारान्त उकारान्त शब्द से परे ङि विभक्ति हो, तो उसके स्थान में औकार और घिसंज्ञक शब्द के इकार उकार को अकारादेश हो ।

जैसे—'अग्नि+औ' । वृद्धिआदेश होके—अग्नौ ॥

अग्न्योः । अग्निषु ॥

संबोधन—'अग्नि+सु' यहां संबुद्धिसंज्ञा होके—

१. नुद्—(इत्वनथापो नुद् ॥ ७ । १ । २४) नामिक—३४ ॥

२. दीर्घ—(नामि ॥ ११ । ४ । ३) नामिक—३५ ॥



४६८-ह्रस्वस्य गुणः ॥ ६४ ॥ अ० ७ । ३ । १०८ ॥

संवृद्धि परे द्वो, तो ह्रस्वान्त अङ्ग को गुण हो ।

इसलिये गुण होके (एङह्रस्वात्संभृद्धेः ॥ ६ । १ । ६६) इस सूत्र से सकार का लोप हुआ—हे अग्ने ॥

हे अग्नी । हे अग्नयः । यहां संहिता क्यों नहीं होती, सो (हैहेप्रयोगे हैहयोः ॥ ८ । २ । ८५) इस सूत्र से 'हे' की प्लुतसंज्ञा होके उसको प्रकृतिभाव हो जाता है ॥

इसी प्रकार वैद्विः, रवि, इत्यादि इकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों का साधुत्वविषय जानना चाहिये ॥

परन्तु पति शब्द में इतना विशेष है—

४६९-पतिः समास एव ॥ ६५ ॥ अ० १ । ४१ ८ ॥

पति शब्द समास ही में घिसंज्ञक हो ॥

इससे समास से अन्यत्र पति शब्द को घिसंज्ञा के कार्य नहीं होते—पत्या । पत्ये ॥

'पति+ङसि' यहां 'पत्यस्' इस अवस्था में—

४७०-रुच्यत्यात्परस्य ॥ ६६ ॥ अ० ६ । १ । ३०३ ॥

जो रुच्य और त्य इनसे परे ङस् सम्बन्धी अकार हो, तो उसको पूर्वरूप उकार आदेश हो ।

पत्युः ॥

१. यह सूत्र अष्टमाध्याय में प्लुतप्रकरण में कहा है ॥

२. प्रकृतिभाव—(प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ॥ ६ । १ । १२४) लन्धि०—१७० ॥

‘पति+ङि’ ङि को औकार’ आदेश हो गया—पत्यौ ॥

और सखि शब्द में विशेष यह है कि—‘सखि+सु’—

४७१-अनङ् सौ ॥ ६७ ॥ अ० ७।१।६३ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे हो, तो सखि शब्द को अनङ् आदेश हो।

अनङ् आदेश के अ, ङ् इनकी इत्संज्ञा और लोप तथा दीर्घ<sup>१</sup> होकर—‘सखान्+सु’ (इत्ङ्याभ्यो दीर्घात् ॥ ६।१।६८) इस (ना० ५०) सूत्र से सु का लोप, और—

४७२-नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ६८ ॥

अ० ८।२।७ ॥

प्रातिपदिकान्त पद के नकार का लोप हो।

‘सखि+औ’ इस अवस्था में—

४७३-सख्युरसंबुद्धौ ॥ ६९ ॥ अ० ७।२।६२ ॥

असंबुद्धि में जी सखि शब्द, उससे परे जो सर्वनामस्थान, सो णित् हो।

उससे णित् होकर—

४७४-अचोऽणिगति ॥ ७० ॥ अ० ७।२।११५ ॥

ङित् और णित् प्रत्यय परे हों, तो अजन्त अङ्ग को वृद्धि हो।

१. ङि को औकार—(इदुभ्यामौत् ॥ ७।३।११८) इससे हुआ।

२. दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ॥ ६।४।८) नामिक—४६ ॥



जैसे—‘सखै+औ’ अब ऐकार को ‘आय्’ आदेश होके—  
सखायौ । सखायः । सखायम् । सखायौ ॥

इसके ‘पति’ शब्द के समान—सखीन् । सख्या । सख्ये ।  
सख्युः । सख्युः । सख्यौ, इत्यादि ॥

‘पति’ शब्द को वेद में कुछ विशेष है—

४७५—षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा ॥७१॥ अ० १ । ४ । ६ ॥

षष्ठीयुक्त जो ‘पति’ शब्द उसकी ‘धिसंज्ञा’ वेद में विकल्प  
करके हो ।

जैसे—भूतानां पतये नमः; भूतानां पत्ये नमः ॥

इकारान्त नियतनपुंसकलिङ्ग वारि शब्द—

‘वारि+सु’ इस अवस्था में—

४७६—स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७२ ॥ अ० ७ । १ । २३ ॥

जो, नपुंसकलिङ्ग से परे सु और अम् हों तो उनका लोप हो ।

वारि ॥

‘वारि+औ’ यहां (नपुंसकाच्च ॥ ७ । १ । २६) इस (ना० ४२)

सूत्रसे औकार के स्थान में ‘शी’ आदेश और शकार की इत्संज्ञा  
होके—‘वारि+ई’ इस अवस्था में—

४७७—इकोऽचि विभक्तौ ॥७३॥ अ० ७ । १ । ७३ ॥

जो अजादि विभक्ति परे हो, तो इगन्त नपुंसक अङ्ग को  
उम् का आगम हो ।

नुम् होके—वारिणी । 'वारि+जस्' यहाँ 'शि' आदेश और दीर्घ<sup>३</sup> हो के—वारीणि ॥

फिर भी द्वितीयाविभक्ति में—वारि । वारिणी । वारिणिः ।

वारिणा । वारिभ्याम् । वारिभिः । वारिणे । वारिणाम् । वारिभ्यः । वारिणः । वारिभ्याम् । वारिभ्यः । वारिणः । वारिणोः ।

'वारि+आम्' यहाँ नुट् और नुम् दोनों की प्राप्ति में पूर्वविप्रतिषेध से नुट्<sup>३</sup> होता है । यदि नुम् हो तो पूर्वान्त होने से दीर्घ न हो—वारीणाम् । वारिणि । वारिणोः । वारिणुः ॥

इसके संबोधन में प्रयोग नहीं बनते, क्योंकि 'वारि' शब्द से जल का ग्रहण होता है । उसके जड़ होने से संबोधन नहीं बन सकता ॥

१. 'शि' आदेश—(जश्शसोः शिः ॥ ७।१।२०) नामिक—४२॥

२. दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६।४।८) नामिक—४६ ॥

३. नुम् (इकोऽचि विभक्तौ ॥ ७।१।४३) इससे प्राप्त हुआ, तथा (इस्वनधापो नुट् ॥ ७।१।५४) नामिक—३४ इससे नुट् प्राप्त हुआ । इन दोनों की युगपत् प्राप्ति में (विप्रतिषेधे परं कार्यम् ॥ १।४।२) सन्धि०—११७ । इस परिभाषा से पर कार्यं नुम् ही पाया, उस नुम् का (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन) इस वार्तिक बल से नुम् बांध के पूर्व कार्यं नुट् होता है ॥

४. वारि, वारिणी, वारीणि । वारि, वारिणी, वारीणि । वारिणा, वारिभ्याम्, वारिभिः । वारिणे, वारिभ्याम्, वारिभ्यः । वारिणः, वारिभ्याम्, वारिभ्यः । वारिणः वारिणोः, वारीणाम् । वारिणि, वारिणोः, वारिणु ॥



इसी प्रकार और भी सब नियतनपुंसकलिङ्ग इकारान्त अतिरि आदि शब्दों का साधुत्व जानना चाहिये ॥

अन्तु—अस्थि; दधि; सक्थि; अक्षि, इन चार नपुंसक-लिङ्ग इकारान्त शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं, उनको लिखते हैं—

अस्थि । अस्थिनी । अस्थोनि । फिर भी—अस्थि । अस्थिनी । अस्थीनि ।

• ‘अस्थि+टा’ इस अवस्था में—

४७८—अस्थिदधिसक्थ्यक्षणात्मनङ्कुदात्तः ॥७४॥

अ० ७ । १ । ७५ ॥

• तृतीयादि अजादि विभक्तियों के परे अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि, शब्दों को अर्नङ् आदेश हो ।

जैसे—‘अस्थनङ्+टा’ इस अवस्था में अ, ङ् ट्, इनकी इत्संज्ञा हो के लोप होगया । उक्त अजादि विभक्तियों में ‘अस्थन्’ इसकी भसंज्ञा होके—

४७९—अल्लोपोऽनः ॥७५॥ अ० ६ । ४ । १३४ ॥

अजादि विभक्तियों के परे अघ्नन्त भसंज्ञक अङ्ग के अकार का लोप हो ।

इससे सकारोत्तर अकार का लोप होगया । जैसे—‘अस्थन्+आ’ स्थ्, न्, टा के आकार में मिल के—अस्थेना । अस्थे । अस्थन्तः । अस्थन्तः । अस्थन्तोः । अस्थन्ताम् ॥

१. अजादि विभक्ति—टा, डे, डसि, डस्, ओस्, आम्, डि, ओस् ॥

‘अस्थन्+ङि’—

४८०—विभाषा ङिङ्योः ॥ ७६ ॥ अ० ६ । ४ । १३ ॥

ङि और शि विभक्ति के परे भसंज्ञक अन्नन्त के अकार का लोप विकल्प करके हो ।

अस्थिन्; अस्थनि ॥<sup>१</sup>

अस्थनोः । हलादि विभक्तियों के परे ‘वारि’ शब्द के समान जानना चाहिये ॥

‘अस्थि’ आदि शब्दों की व्यवस्था कुछ वेद में<sup>२</sup> विशेष है—

४८१—छन्दस्यपि दृश्यते ॥ ७७ ॥ अ० ७ । १ । ७२ ॥

वेद में भी अस्थि आदि शब्दों में उदात्त अनङ् आदेश देखने में आता है ।

यहां प्रयोजन यह है कि ‘अनङ्’ आदेश नियम से कहा है । उससे अन्यत्र भी देखने में आता है । जैसे—इन्द्रो दधीचो अस्थभिः । भद्रं पश्येमाक्षभिः । अस्थान्युत्कृत्य जुहोति, इत्यादि ॥

४८२—ई च द्विवचने ॥ ७८ ॥ अ० ७ । १ । ७७ ॥

द्विवचन विभक्ति के परे अस्थि आदि शब्दों को उदात्त ईकार आदेश वेद में होता है ।

अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले । अस्थीभ्याम् । दधीभ्याम् ।

१. अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि । अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि । अस्थ्ना, अस्थिभ्याम्, अस्थिभिः । अस्थ्ने, अस्थिभ्याम्, अस्थिभ्यः । अस्थ्नाः, अस्थिभ्याम्, अस्थिभ्यः । अस्थ्नाः, अस्थनोः, अस्थ्नाम् । अस्थिन्; अस्थनि, अस्थनोः, अस्थिषु ॥

२. वेदे—अस्थी । अस्थानि । अस्थीभ्याम् । अस्थभिः । ईदृशान्यपि ॥



सक्थीभ्याम् । अंक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्, इत्यादि ॥

इकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग वेदि शब्द—

वेदि । वेदी । वेदयः । वेदिम् । वेदी । वेदीः । वेद्या । वेदिभ्याम् । वेदिभिः ।

‘वेदि+ङे’ इस अवस्था में—

४८३-ङिति ह्रस्वश्च ॥ ७६ ॥ अ० १ । ४ । ६ ॥

स्त्रीलिङ्ग के वाचक ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्द, और जिनके स्थान में इयङ् ल्यङ् होते हैं, ऐसे जो दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त शब्द हैं, उनकी नदी संज्ञा विकल्प करके हो ।

दूसरे पक्ष में ह्रस्व इकारान्त उकारान्त शब्दों की ‘घिसंज्ञा’ भी होती है । इस कारण ‘वेदि’ शब्द की ‘नदी’ और ‘घि’ दोनों संज्ञा होती हैं । प्रथम नदी संज्ञा होकर—

४८४-आएनद्याः ॥ ८० ॥ अ० ७ । ३ । ११२ ॥

न्यन्त अङ्ग से परे ङित् विभक्ति को आट् का आगम हो ।

‘वेदि+आट्+ङे’ यण और वृद्धिपदादेश होके—वेद्यैः जिस पक्ष में नदीसंज्ञा न हुई वहां घिसंज्ञा होके—‘वेदि+ङे’ यहां अग्नि शब्द के समान गुण और अय् आदेश होके—वेदये ॥

वेदिभ्याम् । वेदिभ्यः । ‘वेदि+आट्+ङसि’ इ, उ, इ इनकी इत्संज्ञा होके—वेद्याः, घिसंज्ञा पक्ष में—वेदेः । वेदिभ्याम् । वेदिभ्यः । ‘वेदि+आट्+ङस्’ पूर्ववत्—वेद्याः, वेदेः । वेद्योः । ‘वेदि+आम्’ यहां नुट् होके—वेदीनाम् ॥

१. नदीसंज्ञा मान के (ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ७ । १ । ५४)

नामिक—३४ इससे नुट् हुआ ॥

'वेदि+ङि' नदीसंज्ञा में—'वेदि+आट्+आम्' = वेद्याम्; घिस  
में—वेदों। वेद्योः। वेदिषु' ॥

इसी प्रकार—श्रुति; स्मृति; बुद्धि; धृति; कृति; वा  
हानि; रुचि; भूमि और धूलि, आदि शब्दों का साधुत्व जा  
चाहिये ॥

### अथ ईकारान्तविषयः ॥

ईकारान्त पुल्लिङ्ग सेनानी शब्द—

'सेनानी+सु' उकार का लोप, रुत्व और विसर्जनीय होके  
सेनानीः ॥ 'सेनानी+औ'—

४८५-एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ॥ ८१ ॥

अ० ६।४।८१

जिससे धातु का अवयव संयोग पूर्व न हो ऐसा  
इवर्ण है; तदन्त अनेकाच् अङ्ग को अच् परे हो, तो यणादेश  
सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्यम्। सेनान्यौ। सेनान्य  
सेनान्या ॥

सेनानीभ्याम्। सेनानीभिः। सेनान्ये। सेनानीभ्याम्  
'सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्य  
सेनान्योः। सेनान्याम्। 'सेनानी+ङि' यहां नी. से परे ङि

१. वेदिः, 'वेदी, वेदयः। वेदिम्, वेदी, वेदीः। वेद्या, वेदिभ्या  
वेदिभिः। वेद्यैः, वेदये, वेदिभ्याम्, वेदिभ्यः। वेद्याः, वेदे, वेदिभ्या  
वेदिभ्यः। वेद्याः, वेदे, वेद्योः, वेदीनाम्। वेद्याम्, वेदी, वेद्यो  
वेदिषु ॥



आम्' आदेश होके—सेनान्याम् । सेनान्योः । सेनानीषु ।  
संबोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है—हे सेनानीः । हे सेनान्यौ ।  
हे सेनान्यः ॥

इसी प्रकार—ग्रामणी; अग्रणी; यज्ञनी; सुधी, इत्यादि  
शब्दों के रूप भी जानना ॥ परन्तु 'ग्रामणी' शब्द में वेद में यह  
विशेष है कि—

४८६—श्रीग्रामण्योदछन्दसि ॥ ८२ ॥ अ० ७ । १ । २६ ॥

वेद में श्री और ग्रामणी शब्द से परे आम् हो तो, उसको  
नुँद आगम होता है । जैसे—श्रीणाम्<sup>२</sup> । ग्रामणीनाम्<sup>३</sup> ॥

और—सुधी शब्द में यह विशेष है कि—'सुधी+सु'=  
सुधीः<sup>४</sup> । 'सुधी+औ'—

४८७—न भूसुधियोः ॥ ८३ ॥ अ० ११ । ४ । ८२ ॥

अजादि विभक्ति के परे 'भू' और 'सुधी' शब्द को यणदेश  
न हो ।

१. आम्—( डेराग्नचाग्नीभ्यः ॥ ७ । ३ । ११६ ) नामिक—२४ ॥

२. श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् । अपि तत्र सूतग्रामणीनाम् ॥

३. ग्रामणीः, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः । ग्रामण्यम्, ग्रामण्यौ, ग्रामण्यः ।  
ग्रामण्या, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभिः । ग्रामण्ये, ग्रामणीभ्याम्,  
ग्रामणीभ्यः । ग्रामेण्यः, ग्रामणीभ्याम्, ग्रामणीभ्यः ।  
ग्रामेण्यः, ग्रामण्योः, ग्रामण्याम् । ग्रामण्याम्, ग्रामण्योः,  
ग्रामणीषु । हे ग्रामणीः, हे ग्रामण्यौ, हे ग्रामण्यः ॥

४. सुष्ठु ध्यायतीति सुधीः पण्डितः, सुष्ठु ध्यायति या सुष्ठु धीर्यस्या  
वेति विग्रहे श्रीवत् ॥

यणादेश के निषेध होने से इयङ् उवङ् आदेश होते हैं  
 सुधियौ । सुधियः । सुधियम् । सुधियौ । सुधियः । सुधियम् ।  
 सुधिये । सुधियः । सुधियः । सुधियाम् । सुधियि । सुधियौ ।

सुधीषु । संबोधन में यहां भी कुछ विशेष नहीं । 'भू' शब्द का साधुत्व आगे आवेगा ॥

'सुधी' और 'भू' शब्द का वेद में यह विशेष है कि—

४८८—छन्दस्युभयथा ॥ ८४ ॥ अ० ६ । ४ । ८६ ॥

वैदिकप्रयोग विषय में अजादि विभक्तियों के परे 'भू' और 'सुधी' शब्द को यणादेश विकल्प करके हो ।

सुध्यौ; सुधियौ । सुध्यः; सुधियः; इत्यादि ॥

'सेनानी' आदि शब्द यदि स्त्रीलिङ्ग के विशेषण हों तो इनके प्रयोगों में झुन्नु विशेषता नहीं है, और नपुंसकलिङ्ग तो इनके प्रयोग 'वारि' शब्द के समान होते हैं, क्योंकि नपुंसकलिङ्ग में उक्त ह्रस्व इकारान्त हो जाते हैं ॥

अध जो शब्द नियतस्त्रीलिङ्ग ईकारान्त हैं, उनके विषय लिखते हैं—

नियत ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग कुमारी शब्द—

'कुमारी+सु' यहां उकार की इत्संज्ञा और लोप तद्धीवन्त से अपृक्त हल् सु का लोप होकर—कुमारी ॥

'कुमारी+त्रौ'—

१. ( हल्ङ्याभ्यो दीर्घास्तुतिस्यपृक्तं हल् ॥ ६ । १ । ६८ नामिक—५० ॥



४८६-दीर्घाज्जसि च ॥ ८५ ॥ अ० ६।१।१०४॥

दीर्घ से परे जस् वा इजादि विभक्ति हों, तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश न हो।

यहाँ 'कुमारी' दीर्घ ईकारान्त शब्द है, इससे पूर्वसवर्ण-दीर्घ का निषेध होकर यणदेश होता है। जैसे—कुमार्यौ। कुमार्यः ॥

दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों का जस् विभक्ति के परे वेद में यह विशेष है—

४८०-वा छन्दसि ॥ ८६ ॥ अ० ६।१।१०४॥

[ वेद में ] जो दीर्घ से परे जस् हो, तो उसको पूर्वसवर्ण-दीर्घ एकादेश-विकल्प करके हो।

जैसे कुमारीः, कुमार्यः। वधूः, वध्वः, इत्यादि ॥

कुमारीम्। कुमार्यौ। कुमारीः। कुमार्या। कुमारीभ्याम्। कुमारीभिः ॥

• 'कुमारी+ङे' यहाँ—

४८१-यू स्यादयौ नदी ॥ ८७ ॥ अ० १।४।३ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग के वाचक ईकारान्त शब्द हैं; उनकी नदी संज्ञा हो।

• 'कुमार्यै' ॥

१. नधेन्त मानकर (आणून्धाः ॥ ७।३।११२) नामिक—८०  
इससे 'आट्' आगम होगया ॥ आ० २५।१०४॥

कुमारीभ्याम् । कुमारीभ्यः । कुमार्याः । कुमारीभ्याम् ।  
 कुमारीभ्यः । कुमार्याः । कुमार्योः । 'कुमारी+आम्' नुट्' होके—  
 कुमारीणाम् । कुमार्याम् । कुमार्योः । कुमारीषु ॥

संबोधन में अपृक्त हल् 'सु' का लोप होकर—

४९२-अम्बार्थनद्योर्हस्यः ॥ ८८ ॥ अ० ७ । ३ । १०७ ॥

सम्बुद्धि परे हो, तो अम्बार्थ और नदीसंज्ञकों को हस्वा-  
 देश हो ।

हे कुमारि<sup>२</sup> । हे कुमार्यौ<sup>१</sup> । हे कुमार्यः ॥

जो ईकारान्त डीप, डीष, डीन् प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द  
 हैं, उनको 'कुमारी' शब्द के तुल्य समझना चाहिए । जैसे—  
 नदी; सरस्वती; ब्राह्मणी; आसुरी; किशोरी; वधूटी; चिरण्टी;  
 कर्त्री, इत्यादि ॥

परन्तु ईकारान्त स्त्री शब्द के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं ।  
 'स्त्री+सु' पूर्ववत् कार्य होकर—स्त्री । 'स्त्री+औ' इस  
 अवस्था में—

४९३ स्त्रियाः ॥ ८९ ॥ अ० ६ । ४ । ७६ ॥

जो अजादि प्रत्यय परे हो, तो स्त्री शब्द को इयङ् आदेश हो ।  
 स्त्रियौ । स्त्रियः ॥

१. ( ह्रस्वनष्टो नुट् ॥ ७ । १ । ५४ ) नामिक—३४ इससे  
 नुट् होगया ॥

२. ( प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ १ । १ । ६१ ) सन्धि०—१००  
 इस परिभाषा से प्रत्ययलक्षण मानकर ह्रस्व हुआ ॥



‘खी+अम्’ इस अवस्था में—

४६४-वाऽमृशसोः ॥ ६० ॥ अ० ६।४।८० ॥

अम् और शंस प्रत्यय परे हों, तो खी शब्द को इयङ् आदेश वि रूप करके हो।

खियम्; जिस पक्ष में इयङ् न हुआ, वहां पूर्वरूप एकादेश होकर—खीम् । खियौ । खियः; खीः ॥

खिया । ‘खी+ङे’—

४६५-नेयडुबड्स्थानावस्त्री ॥ ६१ ॥ अ० १।४।४ ॥

जिन खील्लिङ्ग ईकारान्त ऊकारान्त शब्दों के स्थान में इयङ्, उवङ् आदेश होते हैं, वे नदीसंज्ञक न हों, परन्तु खी शब्द तो नदीसंज्ञक हो।

‘खी+आट्+ङे’=खियै । खियाः । खियाः । खियोः । खीणाम् । खियाम् । खियोः । खीषु ॥

संबोधन में नदीसंज्ञा के होने से ह्रस्व हो गया—हे खी । हे खियौ । हे खियः ॥

और जो ईकारान्त खील्लिङ्ग दूसरे प्रकार के हैं—अवी; तरी; स्तरी; तन्त्री; यमी; पपी; लक्ष्मी; श्री, ये भी ‘कुमारी’ शब्द के समान हैं, परन्तु इनसे परे सु अपृक्त हल् लोप नहीं होता, क्योंकि ये डीप्, डीष् वा डीन् प्रत्ययान्त शब्द नहीं हैं ॥

और इन दूसरे प्रकार के शब्दों में एक श्री शब्द में कुछ विशेष है। जैसे—

१. ह्रस्व—(अम्भार्थनयोर्ह्रस्वः ॥ ७।३।१०७) नामिक-८८ ॥

‘श्री+सु’=श्रीः । ‘श्री+औ’—

४६६—अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवडौ ॥ ९२ ॥

अ० ६ । १० । १३७

जो अजादि प्रत्यय परे हों, तो श्नुप्रत्ययान्त धातु के इस उवर्ण<sup>१</sup> और ‘भ्र’ शब्द इनके इकार को इयङ् और उकार उवड आदेश हों ।

जैसे—‘श्रिऔ’ । श्रियः । श्रियम् । श्रियौ । श्रियः । श्रिया  
‘श्री+ङे’=श्रियै;<sup>२</sup> श्रिये । श्रियाः; श्रियः । श्रियाः; श्रियः । श्रियोः

‘श्री+आम्’ इस अवस्था में—

४६७—वाऽऽमि ॥ ९३ ॥ अ० १ । ४ । ५ ॥

‘इयङ् उवड्’ स्थानी स्त्रीवाचक ईकारान्त ऊकारान्त श्रिआम् विभक्ति के परे विकल्प करके नदीसंज्ञक हों ।

नदीसंज्ञापक्ष में—श्रीणाम्; अन्यत्र—श्रियाम् । वेद में श्रीणाम्<sup>३</sup> यह एक ही प्रयोग होता है ॥

‘श्री+ङि’ नदीसंज्ञापक्ष में—श्रियाम्; अन्यत्र—श्रियि श्रियोः । श्रीषु । हे श्रीः । हे श्रियौ । हे श्रियः ॥

१. किम् प्रत्ययान्त शब्द प्रातिपदिकसंज्ञक होके भी धातुसंज्ञा त्याग नहीं करते हैं ॥

२. ( ङिति ह्रस्वश्च ॥ १ । ४ । ६ ) नामिक—७६ इस सूत्र विकल्प करके नदी संज्ञा होगई ॥

३. ( श्रीग्रामण्योरङ्गन्दसि ॥ ७ । १ । ५६ ) नामिक—इससे नित्य नुट् होगया ॥



## अथ उकारान्तविषयः ॥

उकारान्त पुल्लिङ्ग वायु शब्दः—

वायुः । 'वायु+ओ' पूर्वसवर्णदीर्घ होकर—वायू । 'वायु+जस्'  
घिसंज्ञा होने से गुण और ( एचोऽयवायावः ॥ ६ । १ । ७८ )  
सन्धि०—१७६ इस सूत्र से अवादेश होके—वायवः । 'वायु+  
अम्', पूर्वरूप<sup>१</sup> एकादेश—वायुम् । वायू । 'वायु+शस्' पूर्वसवर्ण  
दीर्घ, और सकार को नकार<sup>२</sup> आदेश होकर—वायून् ॥

वायुना । वायुभ्याम् । वायुभिः । वायवे । वायुभ्याम् ।  
वायुभ्यः । 'वायु+ङसि' गुण और पूर्वरूप<sup>३</sup> एकादेश होके—  
वायोः । वायुभ्याम् । वायुभ्यः । वायोः । 'वायु+ओस्' गुणादेश  
होके—वाय्वोः । वायूनाम् । 'वायु+ङि' ङि को औकार<sup>४</sup> तथा  
उकार को अकार<sup>५</sup> होकर वृद्धि एकादेश हुआ—वायौ । वाय्वोः ।  
वायुषु ॥ ०

१. ( अमि पूर्वः ॥ ६ । १ । १०६ ) नामिक—२२ ॥

२. सकार को नकारादेश—( तस्माच्छसो नः पुंसि ॥ ६ । १ । १०२ )  
नामिक—२४ ॥

३. ( ङसिङसोश्च ॥ ६ । १ । १०६ ) नामिक—६२ इससे पूर्व  
रूप हुआ ॥

४. ङि को औ, तथा उ को अ—( अच घेः ॥ ७ । ३ । ११६ )  
नामिक—६३ ॥

सम्बोधन में—‘वायु+स्’ अपृक्तहल् लोप’ और गुण’  
होकर—हे वायो । हे वायू । हे वायवः ॥

इसी प्रकार—विभु; प्रभु; भानु; गुरु; शत्रु, इत्यादि  
उकारान्त, पुंलिङ्ग शब्दों का साधुत्व समझना ॥

परन्तु उकारान्त क्रोष्टु शब्द में कुछ विशेष है—

४६८—तृज्वत्क्रोष्टुः ॥ ९४ ॥ अ० ७ । १ । ६५ ॥

जो संबुद्धिभिन्न ‘सर्वनामस्थान’ परे हो, तो ‘क्रोष्टु’ शब्द  
तृच्<sup>३</sup> प्रत्ययान्तवत् हो ।

क्रोष्टु ऋकारान्त ‘कर्तृ’ शब्द के समान हो जाता है—  
क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् । क्रोष्टारौ ।

यहां ‘संबुद्धिभिन्न’ इसलिये है कि—हे क्रोष्टो । ‘सर्वनाम  
स्थान’ इसलिये है कि—क्रोष्टून, यहां तृज्वद्भाव न हुआ ॥

४६९—किभाषा तृतीयादिष्वचि ॥ ६५ ॥

अ० ७ । १ । ६७ ॥

तृतीयादि अजादि विभक्तियों के परे ‘क्रोष्टु’ शब्द को  
तृज्वद्भाव विकल्प करके हो ।

१. स् लोप—(हल्ङ्वाभ्यो दीर्घास्तुतिस्पृक्तं हल् ॥ ६ । १ । ६८)  
नामिक—५० ॥

२. गुण—(ह्रस्वस्य गुणः ॥ ७ । ३ । १०८) नामिक—६४ ॥

३. यह तृज्वत् अतिदेश रूपातिदेश है, अर्थात् तृच् प्रत्ययान्त ‘क्रुश्’  
धातु का लो रूप है, उसका अतिदेश किया है ॥



कोष्ठा; क्रीण्डुना । 'कोण्डु+आम्' यहां नुट् और तृज्वद्भाव दोनों प्राप्त हुए, तो नुट् हुआ ॥

उकारान्त नपुंसकलिङ्ग वस्तु शब्द—

नपुंसकलिङ्ग

'वस्तु+सु' सु का लुक् होके—वस्तु । द्विवचन में 'शि' आदेश, शकार की इत्संज्ञा और (नपुंसकस्य भलचः ॥ ७११।७२) इस (ना० ४५) सूत्र से नुमागम होके—वस्तुनी । 'वस्तु+जस्' के स्थान में 'शि' आदेश और पूर्व को नुमागम—'वस्तु+नुम्+इ'—वस्तूनि । ऐसे ही द्वितीया में ॥

'वस्तु+टा' विसंज्ञा और उससे परे टा के स्थान में ना आदेश होकर—वस्तुना । वस्तुभ्याम् । वस्तुभिः । वस्तुने । वस्तुभ्याम् । वस्तुभ्यः । वस्तुनः । वस्तुभ्याम् । वस्तुभ्यः । वस्तुनः । वस्तुनोः । वस्तूनाम् । वस्तुनि । वस्तुनोः । वस्तुषु । जड़भाव से संबोधन नहीं होता ॥

इसीप्रकार—शमश्रु; जानु; स्वादु; अश्रु; जतु; त्रपु; तालु; [इत्यादि] नियतनपुंसकलिङ्ग शब्दों के प्रयोग भी जानना ॥

उकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग धेनु शब्द—

धेनुः । धेनू । धेनवः । धेनुम् । धेनू । धेनूः । 'धेनु+टा' टकार की इत्संज्ञा और यण् होके—धेन्वा । धेनुभ्याम् ।

१. तृज्वद्भाव परस्व से प्राप्त था, उसको बाध के पूर्वविप्रतिषेध से (नुमचिरतृज्वद्भावेभ्योनट्) इस वार्तिक बल से नुट् हुआ ॥

२. विसंज्ञा—(शेषो घ्यसखि ॥ ११४।७) नामिक—२६ ॥

३. टा को ना—(आडो नाक्षियाम् । ७।३।१२०) नामिक—६० ॥

धेनुभिः । 'धेनु+ङे' यहां विकल्प करके नदी संज्ञा<sup>१</sup> और द्वितीय पक्ष<sup>२</sup> में घिसंज्ञा होने से दो २ प्रयोग होते हैं । अथात्—धेन्वै; धेनवे<sup>३</sup> । धेनुभ्याम् । धेनुभ्यः । धेन्वाः; धेनोः । धेनुभ्याम् । धेनुभ्यः । धेन्वाः; धेनोः । धेन्वोः । धेनूनाम् । धेन्वाम्; धेनौ । धेन्वोः । धेनुषु । संवोधन में गुण होके— हे धेनो । हे धेनू । हे धेनवः ॥

इसी प्रकार—रज्जु; सरयु; कुहु; तनु; रेणु, इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी [ जानने ] चाहिये ।

### अथ ऊकारान्तविषयः ॥

दीर्घ ऊकारान्त शब्द तीन प्रकार के होते हैं—धात्वन्त, उणादिप्रत्ययान्त, और नियत स्त्रीवाचक ऊङ् प्रत्ययान्त । जैसे—धात्वन्त—परिभूः । उणादि प्रत्ययान्त—कर्षूः । नियत स्त्रीवाचक ऊङ् प्रत्ययान्त—ब्रह्मवन्धूः, इत्यादि ॥

उनमें से धात्वन्त परिभू शब्द के प्रयोग पुंलिङ्ग में दिखाते हैं—

'परिभू+सु'=परिभूः । 'परिभू+औ' यहां उवङ्<sup>३</sup> आदेश होके—परिभुवौ । परिभुवः । परिभुवम् । परिभुवौ । परिभुवः ।

१. नदीसंज्ञा विकल्प—( ङिति ह्रस्वश्च ॥ १. १. ४ । ६ ) नामिक—७६ ॥

२. ( घेङिति ॥ ८ । ३ । १११ ) नामिक—६१ इससे गुणादेश हो जाता है ॥

३. उवङ्—( अचि श्नुधातुभ्रुवां खोरियङुवङौ ॥ ६ । ४ । ७७ ) नामिक—६२ ॥



परिभुवा । परिभूभ्याम् । परिभूभिः । परिभुवे । परिभूभ्याम् ।  
 परिभूभ्यः । परिभुवः । परिभूभ्याम् । परिभूभ्यः । परिभुवः ।  
 परिभुवोः । परिभुवाम् । परिभुवि । परिभुवोः । परिभूषु । यह  
 संबोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

वर्षाभू; दन्भू; कारभू; पुनर्भू, इन चार शब्दों के प्रयोग  
 कुछ विशेष होते हैं—

• वर्षाभूः । 'वर्षाभू+औ'—

५००—वर्षाभ्वश्च ॥ ६६ ॥ अ० ६ । ४ । ८४ ॥

अजादि सुप् विभक्तियों के परे वर्षाभू शब्द के उकार को  
 यणदेश हो ।

वर्षाभवौ । वर्षाभवः । वर्षाभवम् । वर्षाभ्वौ । वर्षाभ्वः ।  
 वर्षाभ्वाम् ॥

वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभिः । वर्षाभ्वे । वर्षाभूभ्याम् ।  
 वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः । वर्षाभूभ्याम् । वर्षाभूभ्यः । वर्षाभ्वः ।  
 वर्षाभ्वोः । वर्षाभवाम् । वर्षाभुवि । वर्षाभ्वोः । वर्षाभूषु ।  
 हे वर्षाभूः । हे वर्षाभवौ । हे वर्षाभवः ।

दन्भूः । 'दन्भू+औ' इस अवस्था में—

५०१—वा०—दन्कारपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः  
 ॥ ६७ ॥ अ० ६ । ४ । ८४ ॥

अजादि सुप् विभक्तियों के परे दन्, कार, पुनर्, ये हैं पूर्व  
 जिसके ऐसे भूशब्द के उकार को यणदेश हो ।

जैसे—दन्भवौ । दन्भवः । कारभूः । कारभवौ । कारभवः ॥

पुनर्भूः । पुनर्भवौ । पुनर्भवः, इत्यादि ॥

वेद में 'पुनर्भू' आदि शब्दों के प्रयोगों में उवङ् और य  
दोनों आदेश होते हैं । जैसे—पुनर्भुवौ; पुनर्भ्वौ । पुनर्भू  
पुनर्भ्वः । पुनर्भुवम्; पुनर्भ्वम्, इत्यादि ॥

उक्त ऊकारान्त शब्द विशेष्य लिङ्ग के आश्रय से त  
लिङ्गों में हो सकते हैं । ऊकारान्त अनियत स्त्रीवाचको  
स्त्रीलिङ्ग में कुछ विशेष कार्य नहीं होते हैं । यदि वे तपुंस  
लिङ्ग में आवें तो उनको ह्रस्वादेश<sup>१</sup> होकर वे प्रयोग विषय  
'वस्तु' शब्द के समान हो जाते हैं ॥

और उणादिप्रत्ययान्त कर्षू इत्यादिकों में यदि कोई पुंलि  
समझा जावे तो उसके प्रयोग 'परिभू' शब्द के समान समझ  
चाहिए ॥

**नियतस्त्रीलिङ्ग ऊङ्प्रत्ययान्त ब्रह्मवन्धू शब्द—**

ब्रह्मवन्धूः । ब्रह्मवन्धू+औ' यहां यण् होके—ब्रह्मवन्ध्वा  
ब्रह्मवन्ध्वः । 'ब्रह्मवन्धू+अम्' यहां पूर्वरूप<sup>२</sup> एकादेश होके  
ब्रह्मवन्धूम् । ब्रह्मवन्ध्वौ । ब्रह्मवन्धूः । ब्रह्मवन्ध्वा । ब्रह्मवन्धूभ्याम्  
ब्रह्मवन्धूभिः । डित् वचनों में नदीसंज्ञादि कार्य<sup>३</sup> होकर—

१. यण्, उवङ्—(उन्दिस्त्युभयथा ॥ ६ । ४ । ८६) नामिक—८४

२. ह्रस्व—(ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य ॥ १ । २ । ४१)  
नामिक—४६ ॥

३. 'कर्षू' यह करीषाग्नि में पुंलिङ्ग और नदी अर्थ में स्त्रीलिङ्ग है

४. पूर्वरूप—(अभि पूर्वः ॥ ६ । १ । १०६) नामिक—२२ ॥

५. नदीसंज्ञा—(यू स्यात्स्यौ नदी ॥ १ । ४ । ३ ) नामिक—८  
तथा नद्यन्त को मानकर आट् इत्यादि कार्य होते हैं ॥





होता । वे दोनों प्रकार के शब्द लिङ्गभेद से तीनों लिङ्गों आते हैं ॥

\* पितृ आदि शब्दों के सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश होता । जैसे—पिता । 'पितृ+सु'—

५०२-ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहमां च ॥ ९८ ॥

अ० ७ । १ । १४ ।

ऋकारान्तः, उशनस्, पुरुदंशस् और अनेहस् शब्दों के संबुद्धिभिन्न सु विभक्ति के परे अनङ् अदेश हो ।

अनङ् होके—'पितृ+अनङ्+सु' अकार उकार की इत्संज्ञ और तकार अकार में मिल के—'पितरु+सु' यहां नान्त अ को दीर्घ और नकार का लोप होके पिता ॥

'पितृ+औ'—

५०३-ऋतो डिसर्वनामस्थानयोः ॥ ९९ ॥

अ० ७ । ३ । ११० ।

डि और सर्वनामस्थान परे हो, तो ऋकारान्त अङ्ग को गुणदेश हो ।

ऋकार के स्थान में 'अर्' गुण होके—पितरौ । पितरः । पितरम् । पितरौ ॥

१. नान्त अङ्ग को दीर्घ—( सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ॥ ६ । ४ । ८ )  
नामिक—४६ ॥

२. नलोप—( नलोपः प्रातिपदिकान्तम्य ॥ ८ । २ । ७ )  
नामिक—६८ ॥



‘पितृ+शस्’ यहां शकार की इत्संज्ञा, पूर्वसवर्णदीर्घ<sup>१</sup> एकादेश और सकार को नकारादेश होके—पितृन् । ‘पितृ+टा’ शकार की इत्संज्ञा ऋ के स्थान में र्<sup>२</sup> आदेश होके—पित्रा । पितृभ्याम् । पितृभिः । पित्रे । पितृभ्याम् । पितृभ्यः ॥

‘पितृ+ङसि’ यहां—

५०४—ऋत उत् ॥ १०० ॥ अ० ६।१।११० ॥

ओ ऋकारान्त से परे ङसि, ङस् सम्बन्धी<sup>३</sup> अकार हो, तो पूर्व पर के स्थान में उकार एकादेश हो<sup>४</sup> ।

फिर उकार रपर हुआ । जैसे—पितुरस् ।

५०५—रात्सस्य ॥ १०१ ॥ अ० ८।२।२४ ॥

रेफ से परे संधोगान्त सकार का ही लोप हो<sup>५</sup> ।

सकार का लोप और रेफ को विसर्जनीय<sup>६</sup> होके—पितुः ॥

पितृभ्याम् । पितृभ्यः । पितुः । पित्रोः ॥

‘पितृ+आम्’ यहां नुट्<sup>७</sup> और दीर्घ<sup>८</sup> होके—

५०६—वी०—रषाभ्यां णत्व ऋकारग्रहणम् ॥ १०२ ॥

अ० ८।४।१ ॥

१. पूर्वसवर्ण दीर्घ—( प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ॥ ६।१।१०१ ) नामिक—२१ ॥

२. र्—( इको यणचि ॥ ६।१।७७ ) सन्धि०—१७८ ॥

३. रपर—उरश्च रपरः ॥ १।१।५० ) सन्धि०—८७ ॥

४. नुट्—ह्रस्वनद्यापो नुट् ॥ ७।१।५४ ) नामिक—३४ ॥

५. दीर्घ—( नामि ॥ ६।४।३ ) नामिक—३५ ॥

र, ष से परे एत्व विधान में ऋकार ग्रहण करना चा  
अर्थात् एक पद में ऋकार से परे भी नकार के  
एकारादेश हो ।

जैसे—पितृणाम् ॥

‘पितृ+ङि’ गुण<sup>१</sup> और रपर होके—पितरि । पित्रोः । पि  
सम्बोधन में सम्बुद्धिगुण<sup>२</sup> होके—हे पितः । हे पित  
हे पितरः<sup>३</sup> ॥

इसी प्रकार—भ्रातृ, जामातृ, इत्यादि संज्ञाशब्दों के प्र  
समझने चाहिये ॥

परन्तु नृ शब्द को आम् विभक्ति के परे जो कुछ वि  
होता है, सो लिखते हैं—

५०७—नृ च ॥ १०३ ॥ अ० ६ । ४ । ६ ॥

नुद्सहित आम् विभक्ति के परे नृ शब्द के ऋकार  
विकल्प करके दीर्घ हो ।

जैसे—नृणाम्, नृणाम् ॥

संबोधन में—हे नः । हे नरौ । हे नरः ॥

१. गुण—( ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ॥ ७ । ३ । १ )  
नामिक—२६ ॥

२. संबुद्धिगुण—( ह्रस्वस्य गुणः । ७ । ३ । १०८ ) नामिक—

३. पिता, पितरौ, पितरः । पितरम्, पितरौ, पितृन् । पित्रा, पितृम्  
पितृभिः । पित्रे, पितृभ्याम्, पितृभ्यः । पितुः, पितृभ्याम्, पितृ  
पितुः, पित्रोः, पितृणाम् । पितरि, पित्रोः, पितृषु । हे पि  
हे पितरौ, हे पितरः ॥



दूसरे' प्रकार के ऋकारान्त शब्दों में ऋकारान्त पुंलिङ्ग  
हीतृ शब्द—

'हीतृ+सु' पूर्ववत् प्रातिपदिकसंज्ञादि तथा अनङादेशादि  
कार्य्य होकर—होता ॥

'हीतृ+औ' यहां गुण होके—होतृ+औ—

५०८—अप्तृनृत्तृचस्वसृप्नृत्नेष्टृत्वष्टृत्तृहोत्तृपोत्तृ

प्रशास्तृणाम् ॥ १०४ ॥ अ० ६।४।११ ॥

जो संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो अप् शब्द, तृत्  
च प्रत्ययान्त और स्वसृ, नप्त्, नेष्टृ, त्वष्टृ, तृत्, होत्, पोत्,  
शास्तृ इन शब्दों [ की उपधा ] को दीर्घादेश हो ।

जैसे—होतारौ। होतारः । होतारम् । होतारौ शेष प्रयोग  
'पितृ' शब्द के समान सत्प्रभना ॥

इसी प्रकार—कर्त्तृ; हर्त्तृ, आदि तथा नप्त्; नेष्टृ; त्वष्टृ;  
तृत्; होत्; प्रशास्तृ शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहिये ॥

ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग कर्त्तृ शब्द—

'कर्त्तृ+सु' यहां सु, निभक्ति का, लुक्<sup>१</sup> होके—कर्त्तृ ।  
'कर्त्तृ+औ' औकार के स्थान में शी<sup>३</sup> आदेश और पूर्व को नुम्<sup>२</sup> ॥

१. दूसरे अर्थात् जिन्को 'सर्वनामस्थान के परे दीर्घादेश होता है ॥

२. सु लुक्—(स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७।१।२३) नामिक—७२ ॥

३. औ को शी—(नपुंसकाच्च ॥ ७।१।१५) नामिक—४२ ॥

४. पूर्व को नुम्—(नपुंसकस्य ऋलचः ॥ ७।१।७२)

नामिक—४५ ॥

होके—कर्तृणी । 'कर्तृ+जस्' यहां 'शि' आदेश नुम् और  
होके—कर्तृणि । द्वितीया विभक्ति में भी कर्तृ । कर्तृ  
कर्तृणि ॥

'कर्तृ+टा' यहां से लेकर अजादि विभक्तियों में  
होकेगा—कर्तृणा । कर्तृभ्याम् । कर्तृभिः । कर्तृ  
कर्तृभ्याम् । कर्तृभ्यः । कर्तृणः । कर्तृभ्याम् । कर्तृ  
कर्तृणः । कर्तृणोः । कर्तृणाम् । 'कर्तृ+ङि' यहां गुण हो  
कर्तरि । कर्तृणोः । कर्तृषु संबोधन में—हे कर्तः; हे क  
हे कर्तृणी । हे कर्तृणि ॥

इसी प्रकार और भी ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों  
प्रयोग समझने चाहिये ॥

१. जस् को शि—( जश्शसोः शिः ॥ ७ । १ । १ )  
नामिक—४३ ॥

२. पूर्व को दीर्घ—( सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६ । ४ ॥  
नामिक—४६ ॥

३. अजादि विभक्ति में नुम्—( इकोऽचि विभक्तौ ॥ ७ । १ । १ )  
नामिक—७३ ॥

४. गुण—( ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ॥ ७ । ३ । १ )  
नामिक—८६ ॥

५. यहां ( न लुमताङ्गस्य ॥ १ । १ । ६३ ) सन्धि—१०१  
परिभाषा के अनित्य पक्ष में ( ह्रस्वस्य गुणः ॥ ७ । ३ । १ )  
नामिक—६५ इससे गुण हो जाता है । उक्त परिभाषा का अर्थ  
पक्ष ( इकोऽचि विभक्तौ ॥ ७ । १ । ७३ ) इसकी व्याख्या  
महाभाष्यकार ने कहा है [ महा० अ० ७ पा० १ अ० २ ]



परन्तु जो ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग में केवल स्वसु; दुहितु; नवान्द; यातु; मातु; तिसु; चतसु, ये सात शब्द हैं, इनके रूप कुछ भिन्न होते हैं ॥

नियत ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग दुहितृ शब्द—

‘दुहितृ+सु’ = दुहिता । दुहितरौ । दुहितरः । दुहितरम् । दुहितरौ । दुहितृः, यहां पुँल्लिङ्ग के न होने से ‘शस्’ के सकार को नकार न हुआ । दुहित्रा । दुहितृभ्याम् । दुहितृभिः । आगे, ‘पितृ’ शब्द के समान समझना चाहिये ॥

तिसु, चतसु शब्द में विशेष यह है कि—

५०९-त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ॥ १०५ ॥

अ० ७।२।६१ ॥

जो स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान त्रि और चतुर् शब्द हों, तो उनको तिसृ और चतसृ आदेश हों ।

५१०-अचिर ऋतः ॥ १०६ ॥ अ० ७।२।१०० ॥

जो अजादि विभक्ति परे हों, तो तिसृ और चतसृ शब्द के ऋकार को रेफ आदेश हो ।

‘तिसृ+जस्’ = तिस्रः । शस् में भी ऐसा ही होता है ॥

५११-न तिसृचतसृ ॥ १०७ ॥ अ० ६।४।४ ॥

तिसृ और चतसृ शब्दों को नुद् सहित आम् विभक्ति परे हो, तो दीर्घ न हो ।

तिसृणाम् । चतसृणाम् ॥

५१२-छन्दस्युभयथा ॥ १०८ ॥ अ० ६ । ४ । १ ।

दिक प्रयोगों में नुट्सहित आम् विभक्ति के परे तिस्र, चतुर् शब्दों को विकल्प करके दीर्घ होवे ।

तिस्रणाम्; तिस्रणाम् । चतस्रणाम्; चतस्रणाम् ॥

इसी प्रकार इन छः शब्दों के अन्य प्रयोग ऋकारान्त समझने चाहिये ॥

परन्तु स्वस्र शब्द को सर्वनामस्थान में 'होतृ' शब्द के साथ दीर्घ होता है—स्वसा । स्वसारौ । स्वसारः । स्वसारम् । स्वसारौ ॥

अथ ऐकारान्तविषयः ॥

ऐकारान्त पुल्लिङ्ग रै शब्द—

'रै+सु'—

५१३-रायो हलि ॥ १०९ ॥ अ० ७ । २ । ८५ ॥

हलादि विभक्तियों के परे 'रै' शब्द को आकारादेश हो ।

जैसे—'रा+सु' उकार की इत्संज्ञा और लोप तथा सकृत् रत्व और विसर्जनीय होके—राः ॥

'रै+औ' अजादि विभक्तियों के परे सर्वत्र ऐकार के स्थान में—'आय्' आदेश होजाता है—रायौ । रायः । रायम् । रायौ । रायः । रायौ ॥

'रै+भ्याम्' इत्यादि में भी हलादि विभक्तियों के होने

१. (एचोऽयवायावः ॥ ६ । १ । ७८) सन्धि०—१७६ इस ५३ से ।



आकारादेश होजाता है—राभ्याम् । राभिः । राये । राभ्याम्  
राभ्यः । रायः । राभ्याम् । राभ्यः । रायः । रायोः । रायाम् ।  
रायि । रायोः । रासु । यहां 'रै' शब्द धन का वाचक है,  
इसलिये संवोधन नहीं होता ॥

जो अन्य कोई 'ऐकारान्त' शब्द आवे, तो उसके भी प्रयोग  
इसी प्रकार समझने चाहिये ॥

### अथ ओकारान्तविषयः ॥

ओकारान्त पुल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग गो शब्द—

परन्तु इसके दोनों लिङ्गों में एक से ही प्रयोग होते हैं ।  
'गो+सु'—

५१४-गोतो णित् ॥ ११० ॥ अ० ७ । १ । १० ॥

जो गो शब्द से परे सर्वनामस्थान विभक्ति हों, तो वे णित्  
के समान हो जावें ।

सर्वनामस्थान को णित्वत् होने से वृद्धि हो जाती है ।  
यहाँ भी 'गो' शब्द को वृद्धि' होके—गौः । गावौ । गावः ॥

'गो+अम्'—

५१५-औतोऽम्शसोः ॥ १११ ॥ अ० ६ । १ । १३ ॥

जो अम् और शस् विभक्ति परे हों, तो ओकारान्त शब्द के  
ओकार को आकारादेश हो ।

जैसे—'गा+अम्' पूर्वरूप एकादेश होकर—गाम् ॥

गावौ । गां । टा विभक्ति के परे अंवादेश होके—गवा ।

१. वृद्धि—( अचोष्णिगिति ॥ ७ । २ । ३१५ ) इस सूत्र से ॥

गोभ्याम् । गोभिः । गवे । गोभ्याम् । गोभ्यः । 'गो+ङ्सि' पूर्व रूप' — एकादेश होके— गोः । गोभ्याम् । गोभ्यः । गोश्वोः । गवाम् । गवि । गवोः । गोषु । जो किसी अर्थ में शब्द का संवोधन आवे तो कुछ विशेष न होगा ॥

### अथ औकारान्तविषयः ॥

औकारान्त स्त्रीलिङ्ग नौ शब्द—

'नौ+सु' = नौः । 'नौ+औ' = नावौ । नावः । नावम् । नावा । नावः । नावा । नौभ्याम् । नौभिः । नापे । नौभ्याम् । नौभ्यः । नावः । नौभ्याम् । नौभ्यः । नावः । नावोः । नावाम् । नावि । नावोः । नौषु ॥

इसी प्रकार—औकारान्त पुल्लिङ्ग ग्लौ शब्द समझना—  
ग्लौः । ग्लावौ । ग्लावः, इत्यादि ॥



# [ अथ हलन्तप्रकरणम् ]

अव जो २ प्रसिद्ध हलन्त शब्द वेदादि ग्रन्थों में आते हैं, उनकी प्रयोगव्यवस्था दिखाई जाती है—

अथ चकारान्तविषयः ॥

चकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाच्<sup>१</sup> शब्द —

‘वाच्+सु’ यहां चकार के स्थान में ककार<sup>२</sup> होके—

५१६—वाचसाने ॥ ११२ ॥ अ० ८।४।२५ ॥

जो अवसान में वर्तमान भल् हों, तो उनको विकल्प करके चर् हो ।

जैसे—वाक्; वाग् ॥

वाचौ । वाचः । वाचम् । वाचौ<sup>१</sup> वाचः । वाचा ।  
‘वाच्+भ्याम्’ यहां भी चकार को ककारादेश होके—‘वाक्+भ्याम्’  
इस अवस्था में—जश्<sup>३</sup> आदेश होकर—वाग्भ्याम् । वाग्भिः ।  
वाचे । वाग्भ्याम् । वाग्भ्यः । वाचः । वाग्भ्याम्<sup>१</sup> वाग्भ्यः ।  
वाचः । वाचोः । वाचाम् । वाचि । वाचोः । ‘वाक्+सु’ यहां  
ककार से परे सु के लकार को क् आदेश होके—‘वाक्+सु’<sup>१</sup>

संकेत में कह चुके हैं कि ‘वाच्’ शब्द वाणी का वाचौ है,  
इसलिये जड़भाव होने से यह संबोधन में नहीं आता ॥

१. यह वाणी का नाम है ॥

२. च् को क्—( घोः कुः ॥ ८।२।३० ) सन्धि०—१८८ ॥

३. यहां ( भलां जशोऽन्ते ॥ ८।२।३६ ) सन्धि०—१८६ ॥

इस सूत्र से जश् आदेश होता है ॥

इसी प्रकार—शुच्; त्वच्; स्नुच्, इत्यादि शब्दों के रूप भी समझने चाहिये ॥

जो चकारान्त शब्दों में निम्नलिखित शब्द हैं, जैसे—प्राच्; प्रत्यच्; उदच्; अर्वाञ्च्; दध्यच्; मध्वच्; कुञ्च्, इत्यादि किन्प्रत्ययान्त शब्दों को पदान्त में सर्वत्र कुत्व हो जाता है। 'प्राच्+सु' यहां—

५१७—उर्गिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ११३ ॥

अ० ७ । १ । ७४ ॥

जो सर्वनामस्थान परे हो, तो धातुरहित उगित् प्रातिपदिक और अञ्चु को नुम् का आगम हो।

'प्राच्+सु' इस अवस्था में (हल्ङ्या० ॥ ६ । १ । ६८) इस (ना०—५०) सूत्र से लोप होकर—

५१८—संयोगान्तस्य लोपः ॥ ११४ ॥

अ० ८ । २ । २३ ॥

संयोगान्त पद के अन्त्य वर्ण का लोप हो।

इससे चकार का लोप होके—

५१९—किन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ११५ ॥

अ० ८ । २ । ६२ ॥

किन् प्रत्यय जिससे कहा हो, उसको पदान्त में कवर्गादेश हो।

१. (किन्: कुरिति सिध्येत [सिद्धे] प्रत्ययग्रहणं कृतम्। किन्प्रत्ययस्य सर्वत्र पदान्ते कुत्वमिष्यते। महाभाष्य ८ । २ । ६२) इसी सूत्र पर है। यहां प्रत्यय ग्रहण का यही प्रयोजन है कि जिस २ धातु से किन् प्रत्यय का विधान किया हो, उस २ को पदान्त में कवर्गादेश हो जाय ॥



इससे नकार को अनुनासिक 'ङ्' आदेश हो जाता है, जैसे—प्राङ्, प्रत्यङ्, इत्यादि ॥

'प्रान्च्+ञौ' यहां नकार को, अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण होके—प्राञ्चौ । प्राञ्चः । प्राञ्चम् । प्राञ्चौ ॥

'प्र+अच्+शस्' इत्यादि सर्वनमस्थान भिन्न विभक्तियों के पूरे भसंज्ञा होकर—

५२०—अचः ॥ ११६ ॥ अ० ६ । ४ । १३८ ॥

भसंज्ञक अञ्चु धातु के अकार का लोप हो ।

जैसे—'प्र+च्+शस्' यहां—

५२१=चौ ॥ ११७ ॥ अ० ६ । ३ । १३८ ॥

चु शब्दमात्र अञ्चु<sup>३</sup> धातु परे हो, तो पूर्व को दीर्घ हो ।

इससे प्र शब्द को दीर्घ हो के— प्राचः । प्राचा ॥

'प्राच्+भ्याम्' यहां चकार को क<sup>४</sup> और ककार को ग<sup>५</sup> होके—प्राग्भ्याम् । प्राग्भिः । प्राचे । प्राग्भ्याम् । प्राग्भ्यः । प्राचः । प्राग्भ्याम् । प्राग्भ्यः । प्राचः । प्राचोः । प्राचाम् । प्राचि । प्राचोः । प्राक्षु ॥ प्राक्षु ।

१. न् को अनुस्वार—( नश्चापदान्तस्य ऋञि ॥ ८ । ३ । २४ )

सन्धि०—१६१ ॥

२. अनुस्वार को परसवर्ण—( अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ॥ ८ । ४ । १७ ) सन्धि—१६६ ॥

३. 'चु' इससे उस अञ्चु धातु का ग्रहण है कि जिसके अकार नकार का लोप हो जाता है ॥

४. च् को क—( चोः कुः ॥ ८ । २ । ३० ) सन्धि०—१८८ ॥

५. क् को ग—( क्लांजश्रुति ॥ ८ । ४ । १२ ) सन्धि०—२३३ ॥

इसी प्रकार—प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीचः, [यहां 'चौ' इससे दीर्घादेश होता है] इत्यादि सब चकारान्त शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये । परन्तु उक्त शब्दों में 'उदच्' और 'कुञ्च्' के रूप सर्वनामस्थान भिन्न अजादि विभक्तियों में कुछ विशेष होते हैं—

५२२-उद इत् ॥ ११८ ॥ अ० ६ । ४ । १३६ ॥

उद् उपसर्ग से परे भसंज्ञक अञ्चु धातु के आकार को ईकार आदेश हो ।

उदीचः । उदीचान् । उदीचे । उदीचः । उदीचः । उदीचोः । उदीचाम् । उदीचि । उदीचोः । उदञ्चु ॥

(अ० त्विगदधृक् ० ॥ ३ । २ । ५६) इस सूत्र में निपातन होने से 'कुञ्च्' शब्द की उपधा के नकार का लोप नहीं होता—कुङ् ।

सर्वनामस्थान में 'कुञ्च्' शब्द 'प्राच्' शब्द के तुल्य है—कुञ्चौ । कुञ्चः । कुञ्चम् । कुञ्चौ । 'कुञ्च+शस्' यहां भी कुछ विशेष नहीं—कुञ्चः । कुञ्चा । 'कुञ्च+भ्याम्' यहां च् को क् अ० अनुस्वार को परसवर्ण ङकार हो के ककार का लोप<sup>१</sup> हो जाता है—कुङ्भ्याम् । कुङ्भिः । कुञ्चे । कुङ्भ्याम् । कुङ्भ्यः । कुञ्चः । कुङ्भ्याम् । कुङ्भ्यः । कुञ्चः । कुञ्चोः । कुञ्चाम् । कुञ्चि । कुञ्चोः । कुङ्चु ॥

१. 'कुञ्च' यहां धात्ववयव अपदान्त नकार के अनुस्वार को परसवर्ण हो जाता है ॥

२. क् का लोप—(संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८ । २ । २३०) नामिक ११४ ॥



## अथ छकारान्तविषयः ॥

छकारान्तं स्त्रीलिङ्गं वा पुल्लिङ्गं प्राच् शब्द ---

‘प्राच्+सु’ यहां—

५२३—ब्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां ।

षः ॥ ११६ ॥ अ० ८ । २ । ३६ ॥

भ्रल् परे वा पदान्त में ब्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज, इन को तथा, छकारान्त और शकारान्त शब्दों को पकारादेश हो ।

जैसे—‘प्राष्+सु’ यहां ष के स्थान में ड<sup>१</sup> होके—‘प्राड्+सु’ सु का लोप और ड के स्थान में विकल्प से चर्<sup>२</sup> होके—प्राट्; प्राड्, दो प्रयोग होते हैं ॥

‘प्राच्+औ’ यहां दीर्घ से परे छकार को तुगागम<sup>३</sup> होकर तकार को चकार<sup>४</sup> हो जाता है—प्राच्छौ । प्राच्छः । प्राच्छम् । प्राच्छौ । प्राच्छः । प्राच्छा । ‘प्राच्+भ्याम्’ यहां पूर्ववत् छकार को ष और ष के स्थान में ड होके—प्राड्भ्याम् । प्राड्भिः ।

१ यह पूछने वाले वा० [ पूछने ] वाली का नाम है ॥

२ ष को ड—(भ्रतां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३६) सन्धि०—१८६ ॥

३ ड को विकल्प चर्—(वावसाने ॥ ८ । ४ । ५५) नामिक—११२ ॥

४ तुक—(दीर्घात् ॥ ६ । १ । ७५) सन्धि०—२०६ ॥

५ त को च—(स्तोः श्चुना श्चुः ॥ ८ । ४ । ३६) सन्धि—२१२ ॥

प्राच्छे । प्राड्भ्याम् । प्राड्भ्यः । प्राच्छः । प्राड्भ्याम् प्राड्भ्यः ।  
प्राच्छोः । प्राच्छाम् । प्राच्छि । प्राच्छो ॥

‘प्राड्+सु’ यहां डकार को टकार<sup>१</sup> होके—प्राट्सु । डकार से परे सकार को धुट्<sup>२</sup> का आगम भी विकल्प करके होता है । जैसे—प्राट्सु; प्राट्सु । सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं है ।

### अथ जकारान्तविषयः ॥

जकारान्त पुल्लिङ्ग ऋत्विज्<sup>३</sup> शब्द—

‘ऋत्विज्+सु’ यह शब्द किन्प्रत्ययान्त है, इस कारण इसको पदान्त में कवर्गदिश<sup>४</sup> हो जाता है । इस कवर्ग को विकल्प करके चर् और दूसरे पक्ष में जश् होके—ऋत्विक् ऋत्विग् ॥

ऋत्विजौ । ऋत्विजः । ऋत्विजम् । ऋत्विजौ । ऋत्विजः ।  
ऋत्विजा । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भिः । ऋत्विजे । ऋत्विग्भ्याम् ।  
ऋत्विग्भ्यः । ऋत्विजः । ऋत्विग्भ्याम् । ऋत्विग्भ्यः । ऋत्विजः ।  
ऋत्विजोः । ऋत्विजाम् । ऋत्विजि । ऋत्विजोः ॥

‘ऋत्विज्+सु’ यहां कुत्व होने से जकार को ग् आदेश

१. ड को ट्—(खरि च ॥ ८ । ४ । ५४) सन्धि० — २३४ ॥

२. धुट्—(डः सि धुट् ॥ ८ । ३ । २६) सन्धि० — २०० ॥

३. ‘ऋत्विज्’ उसको कहते हैं जो ऋतु २ में यज्ञ करे वा करावे ।

४. पदान्त में कुत्व—(किन्प्रत्ययस्य कुः ॥ ८ । २ । ६२) नामिक—११५ ॥



होकर ग् को क्<sup>१</sup> और सु के स् को ष्<sup>२</sup> आदेश हो जाता है । जैसे—ऋत्विक्षु । सम्बोधन में यहां कुछ विशेष नहीं है ॥

इसी प्रकार—उष्णिज्; भुरिज्; उशिज्; वणिज्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहिये ॥

परन्तु कोई २ जकारान्त शब्दों के प्रयोगों में कुछ विशेष भी कार्य्य होता है । जैसे—

परिव्राज्—<sup>३</sup> ~~क. (पौ. प्र. ३. १२८) पृथक् पृथक्~~

इस शब्द के पदान्त में सर्वत्र जकार को षकारादेश होता है । षकार के स्थान में ट्, ड् पूर्ववत् होके—परिव्राट्; परिव्राड् । परिव्राड्भ्याम् । परिव्राड्भिः । परिव्राजे । परिव्राड्भ्याम् । परिव्राड्भ्यः, इत्यादि पूर्ववत् जानो ॥ परिव्राट्सु; परिव्राट्सु । यहां भी सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

इसी प्रकार—विश्वभ्राज्; सम्राज्; विश्वराज्; विराज्; यवभृज्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी जानने चाहिये ॥

परन्तु युज्<sup>४</sup> और अवयाज् इन दो शब्दों में कुछ विशेष है—“युज्+सु”

१. ग् को क्—( खरि च ॥ ८ । ४ । ५४ ) सन्धि०—२३४ ॥

२. स् को ष्—(आदेशप्रत्यययोः ॥ ८ । ३ । ५६) नामिक—३६ ॥

३. 'भुरिज्' इत्यादि शब्दों को ( चोः कुः ॥ ८ । २ । ३० ) सन्धि०—१८८ ॥

४. 'युज्' यह युक्त होनेवाले का नाम है ॥

५२४-युजेरसमासे ॥ १२० अ० ७।१।७१ ॥

सर्वनामस्थान विभक्तियों से परे युज् शब्द को नुम् आगम हो ।

जैसे—‘युनज्+सु’ यहां अन्य कार्य ‘प्राङ्’ शब्द के तुल्य समझना चाहिये—युङ् । युञौ । युञः । युञम् । युञौ । युञ् । युजा । युग्भ्याम् । युग्भिः । युजे । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युज् । युग्भ्याम् । युग्भ्यः । युजः । युजोः । युजाम् । युजि । युजोः । युजु ।

इन उक्त शब्दों में जहां कहीं सम्बोधन की योग्यता हो वहां प्रथमा विभक्ति के तुल्य ही सम्बोधन में भी प्रयोग समझने चाहिये ॥

अवयाज्—

‘अवयाज्+सु’ इनकी सब विभक्तियों में पदसंज्ञा होती है ।

५२५-वा०-श्वेतवाहादीनां डस् पदस्य ॥ १२१ ॥

अ० ३।२।७१ ॥

श्वेतवाहादि प्रातिपदिकों को पदान्त में डस् आदेश हो ।

श्वेतवाहादिकों में ‘अवयाज्’ शब्द भी है । प्रथमा विभक्ति के एकवचन में इस के ‘अज्’ मात्र को ‘उस्’ होकर—‘अवयस्’ यहां—

५२६-अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥ १२२ ॥

अ० ६।४।१४ ॥

१. यहां अवपूर्वक यञ धातु से ( अवे यजः ॥ ३।२।७२ ) इस सूत्र से किन् प्रत्यय होता है ॥



जो सम्बुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे हो, तो धातुरहित अत्वन्त और असन्त शब्द की उपधा को दीर्घादेश हो।

अवयाः ॥ . . .

अवयाजौ । अवयाजः । अवयाजम् । अवयाजौ । अवयाजः । अवयाजा ॥

‘अवयाज्’ आदि शब्दों को हलादि विभक्तियों में डस् हो के—‘अवयस्+भ्याम्’ यहां (ससजुषो रुः ॥ ८।२।६६) इस (ना०-१६) सूत्र से पदान्तर सकार को रु हो के—‘अवय+रु+भ्याम्’ यहां रेकार के उकार की इत्संज्ञा, लोप, रेफ को उकार और पूर्व पर को गुण एकादेश ओकार होके—अवयोभ्याम् । अवयोभिः ॥

अवयाजे । अवयोभ्याम् । अवयोभ्यः । अवयाजः । अवयोभ्याम् । अवयोभ्यः । अवयाजः । अवयाजौ । अवयाजाम् । अवयाजि । अवयाजोः । अवयस्सु । अवयःसु ॥

संवाचन म—

५२७-अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च ॥ १२३ ॥

अ० ८।२।६७ ॥

अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः, ये निपातन हैं ।

हे अवयाः । हे अवयाजौ । हे अवयाजः ॥

१. रू को उ—(हशि च ॥ ६।१।११३) सन्धि०—२५३ ॥

२. हे ‘अवयस्’ यह उक्त सूत्र से दीर्घ नहीं पाता है । इस कारण दीर्घ सिद्ध करने के लिये यह सूत्र है ॥

## अथ टकारान्तविषयः ॥

टकारान्त स्त्रीलिङ्ग वां पुँल्लिङ्ग सरट् शब्द—

‘सरट्+सु’ यहां (हल्ङ्या० ॥ ६। १। ६८) इस (नाम) सूत्र से लोप और विकल्प से चर् हो के—सरट्; सरड् ॥

सरटौ । सरटः । सरटम् । सरटौ । सरटः । सरट्  
‘सरट्+भ्याम्’ यहां जश् होके—सरड्भ्याम् । सरड्भिः ।  
सरटे । सरड्भ्याम् । सरड्भ्यः । सरटः । सरड्भ्याम्  
सरड्भ्यः । सरटः । सरटोः । सरटम् । सरटि । सरटो  
सरट्सु, सरट्सु । सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

इसी प्रकार अन्य भी—लघट् आदि टकारान्त शब्दों  
रूप समझने चाहिये ॥

## अथ तकारान्तविषयः ॥

तकारान्त नियतपुँल्लिङ्ग मरुत् शब्द—

‘मरुत्+सु’ पूर्ववत्—मरुत्; मरुद् । मरुतौ । मरुतः । मरुताम्  
मरुतौ । मरुतः । मरुता । मरुद्भ्याम् । मरुद्भिः । मरुते  
मरुद्भ्याम् । मरुद्भ्यः । मरुतः । मरुद्भ्याम् । मरुद्भ्यः  
मरुतः । मरुतोः । मरुताम् । मरुति । मरुतोः । मरुत्सु  
सम्बोधन में कुछ विशेष नहीं ॥

इसी प्रकार—हरित्; रोहित्; संरचत्; तृपत्; वेहत्, इत्यादि  
तकारान्त स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग समान  
जानने चाहिये ॥



अब उन तकारान्तों को दिखलाते हैं कि जिनमें कुछ विशेष कार्य होते हैं—

तकारान्त नियतपुल्लिङ्ग पठत् शब्द—

‘पठत्+सु’ यहां सर्वनामस्थान में नुम्<sup>१</sup> और संयोगान्तलोप होके—पठन् । पठन्तौ । पठन्तः । पठन्तम् । पठन्तौ । पठतः । आगे ‘मरुत्’ शब्द के समान प्रयोग जानने चाहिये ॥

इसी प्रकार—पचत्; कुर्वत्; गच्छत्; पृषत्; बृहत्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग भी समझने चाहिये ॥

महत् शब्द में कुछ विशेष है। जैसे—

‘महत्+सु’ यहां पूर्ववत् नुम् का आगम हो के—‘महन्त्+सु’ इस अवस्था में—

५२८—सान्तमहतः संयोगस्य ॥ १२४ ॥

अ० ६।२।१० ॥

जो, संबुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान परे हो, तो संकारान्त संयोगी नकार की और महत् शब्द की उपधा को दीर्घ हो।

यहां भी पूर्ववत् तर्करि का लोप और दीर्घ होके—महान् । महान्तौ । महान्तः । महान्तम् । महान्तौ । आगे, के प्रयोगी ‘मरुत्’ शब्द के समान जानने चाहिये ॥

१. ‘पठत्’ पढ़नेवाले को कहते हैं। ‘पठत्’ आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में डीबन्त होकर प्रयोगविषय में ‘कुमारी’ शब्द के समान हो जाते हैं ॥

२. नुम्—( उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७।१।७० )

नामिक—११३ ॥

‘मनुप् प्रत्ययान्त तकारान्त’ शब्दों को ‘असन्त’ शब्दों के समान ‘संबुद्धिभिन्न सु विभक्ति परे दीर्घ’ होता है— गोमां यवमान्; धनवान्; अश्ववान्; विद्यावान्, इत्यादि प्राप्ति सब विभक्तियों में रूप ‘पठत्’ शब्द के समान समझना चाहिये— गोमता । गोमद्ग्रथाम्, इत्यादि । संबोधन में—हे गोमां हे यवमन् । हे धनवन्, इत्यादि ॥

### अथ दकारान्तविषयः ॥

दकारान्त स्त्रीलिङ्ग सम्पद् शब्द—

‘सम्पद्+सु’ यहां भी ( हल्ङ्ङ्या० ॥ ६ । १ । ६८ ) इत् (ना०-५०) सूत्र से लोप और विकल्प से, चर् होकर दो प्रयोग होते हैं—सम्पद्; सम्पत् । सम्पदौ । सम्पदः, इत्यादि ॥

य

इसी प्रकार—शरद्; भसद्; दृशद्; विपद्; आपद्; प्रतिपद् स्त्रीलिङ्ग और— वेदविद्; काष्ठभिद्; नखच्छिद् इत्यादि दकारान्त शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में समान समझने चाहिये । जैसे—

शरत्; शरट् । शरदौ । शरदः, इत्यादि । और—वेदविद् वेदविद् । वेदविदौ । वेदविदः, इत्यादिवत् ॥

१. दीर्घ—( अत्वप्रत्यय चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४ ) नामिक—१२२ ॥

२. ‘सम्पद्’ यह धनादि पेश्वर्य का धोतक है ॥



## अथ नकारान्तविषयः ॥

नकारान्त पुल्लिङ्ग राजन् शब्द—

‘राजन्+सु’ यहां दीर्घ<sup>१</sup> और नलोप<sup>२</sup> होकर—राजा । राजानौ । राजानः । राजानम् । राजानौ । ‘राजन्+शस्’ यहां अल्लोप<sup>३</sup> होकर—‘राजन्+अस्’, नकार को अकारादेश<sup>४</sup> होकर—राक्षः । राज्ञा ॥

‘राजन्+भ्याम्’ यहां भी नकार का लोप होकर—‘राजभ्याम्’ । अब यहां नलोप के पश्चात् (सुपि च ॥ ७ । ३ । १०२) इस (ता०-२८) सूत्र से दीर्घादेश क्यों न हो । सो यह नलोप के असिद्ध<sup>५</sup> होने से नहीं होता । राजभिः । राज्ञे । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राजभ्याम् । राजभ्यः । राज्ञः । राज्ञोः । राज्ञाम् ॥

‘राजन्+ङि’ यहां (विभाषा ङिश्योः ॥ ६ । ४ । १३६) इस (ता०-७६) सूत्र से अकार का लोप विकल्प से होकर दो प्रयोग बन जाते हैं—राज्ञिः राजनि । संवोधन में—हे राजन् । हे राजानौ । हे राजानः ॥

१. दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६ । ४ । ८) नामिक—४६ ॥

२. न लोप—(नलोपः प्रातिपदिकान्तस्थे ॥ ८ । २ । ७)

नामिक—६८ ॥

३. अल्लोप—(अल्लोपोऽनः ॥ ६ । ४ । १३४) नामिक—७५ ॥

४. न् को ज्—(स्तोःश्चुनाश्चुः ॥ ८ । ४ । ३६) सन्धि—११२ ॥

५. नलोप असिद्ध—(नलोपः सुपुस्वरसंज्ञानुविधिषु कृति ॥

८ । २ । ३) सन्धि—१२२ ॥

इसी प्रकार—वृषन्; तच्चन्; प्लीहन्; क्लेदन्; स्नेहन्;  
मूर्द्धन्; मज्जन्; विश्वप्सन्; स्थामन्; सुत्रामन्; धरिमन्;  
शरिमन्; जनिमन्; प्रथिमन्; अदिमन्; महिमन्; सुदामन्;  
सुधीवन्; घृतपावन्; भूरिदावन्, इत्यादि शब्दों के रूप  
समझने चाहिये ॥

और जिन नकारान्त शब्दों में कुछ विशेष कार्य होता है  
उनको यहाँ लिखते हैं—

**पुल्लिङ्ग नकारान्त आत्मन् शब्द—**

आत्मा । आत्मानौ । आत्मानः । आत्मानम् । आत्मानौ ॥

इस शब्द में इतना विशेष है कि—आस्, टा, डे, डसि,  
डस्, ओस्, आम्, डि, ओस् इन विभक्तियों में भ्रमसंज्ञा के  
होने से—

**५२९-न संयोगाद्वमन्तात् ॥ १२५ ॥**

अ० ६ । ४ । १३७ ॥

जो वकारान्त और मकारान्त संयोग से परे अन् हो, तो  
तदन्त भ्रमसंज्ञक अकार का लोप न हो ।

जैसे—आत्मनः । आत्मना । आत्मने । आत्मनः । आत्मनः ।  
आत्मनीः । आत्मनाम् । आत्मनि । आत्मनोः ॥

इसी प्रकार—सुशमन्; सुधर्मन्; अशमन्; शक्मन्;  
परिज्मन्; यज्वन्; सुपर्वन्; अथर्वन्; मातरिश्वन्, इत्यादि  
शब्दों के रूप भी जानने चाहिये ॥



परन्तु नकारान्त पुँल्लिङ्ग अर्थमन् और पूषन् शब्दों के रूपों में इतना विशेष है कि जहां कहीं समास होकर ये दोनों नपुंसकलिङ्ग हो जावें, वहां प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में—

५३०—इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ॥ १२६ ॥ ०

अ० ६।४।१२ ॥

इन्, हन्, पूषन्, और अर्थमन्, ये जिनके अन्त में हों, उन अङ्गों की उपधा को शि विभक्ति के परे दीर्घ होजावे ॥

यह सूत्र नियमार्थ है, अर्थात् जो सर्वत्र सर्वनामस्थान में नकारान्त की उपधा को दीर्घादेश प्राप्त था, सो न हो, किन्तु 'शि' के परे ही हो। जैसे—बहुपूषाणि । बह्वर्थमाणि ॥

५३१—सौ च ॥ १२७ ॥ अ० ६।४।१३ ॥

और पुँल्लिङ्ग में भी [सम्बुद्धिमित्र] सु विभक्ति के परे इन्, हन्, पूषन् और अर्थमन् इनकी उपधा को दीर्घ हो।

जैसे—धनी । शत्रुहा । पूषा । अर्थमा, इनका अन्य विभक्तियों में नियम के होने से दीर्घ नहीं होता। जैसे—पूषणौ । अर्थमणौ । पूषणः । अर्थमणः । पूषणम् । अर्थमणम् । पूषणौ । अर्थमणौ । आगे इनके रूप 'राजन' शब्द के समान सभक्तने चाहिये ॥

वेद में षपूर्व नान्त की उपधा में कुछ विशेष है। जैसे—

५३२—वा षपूर्वस्य निगमे ॥ १२८ ॥ अ० ६।४।१४ ॥

जो वेद में सम्बुद्धिमित्र सर्वनामस्थान परे हो, तो षकार पूर्व वाले नान्त की उपधा के अच् को विकल्प करके दीर्घ हो।

स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीत्; स तक्षाणं तिष्ठन्तमब्रवीत्  
ऋभुक्षाणमिन्द्रम्; ऋभुक्षाणमिन्द्रम्; इत्यादि ॥

श्वन्; युवन्; और मघवन् शब्दों के प्रयोग सर्वनामस्थान-मि  
में 'राजन्' शब्द के समान होते हैं, परन्तु सर्वनामस्थान-मि  
ऋजादि विभक्तियों में कुछ विशेष है। जैसे—

श्वः । श्वानौ । श्वानः । श्वानम् ॥

'श्वन्+शस्'

५३३-श्वयुवमघेनामतादिते ॥ १२९ ॥

अ० ६ । ४ । १२३ ।

जो भसंज्ञक श्वन्, युवन् और मघवन् अङ्ग हैं, उनके  
संप्रसारण हों ।

इससे वकार फरे उकार हुआ । जैसे—'शुडअन्+शस्' ।

५३४-सम्प्रसारणाच्च ॥ १३० ॥ अ० २ । १ । १७ ॥

जो सम्प्रसारणसंज्ञक वर्ण से परे अच् हो, तो पूर्व पर  
स्थान में पूर्वरूप एकादेश हो ।

इससे उकार अकार को मिल के उकार हुआ । जैसे—  
शुनः । शुना ॥

श्वभ्याम् । श्वभिः । शुने । श्वभ्याम् । श्वभ्यः । शुनः ।  
श्वभ्याम् । श्वभ्यः । शुनः । शुनोः । शुनाम् । शुनि । शुनोः ।  
श्वसु ॥

युवा । युवानौ । युवानः । युवानम् । युवानौ । यून् ।

१. 'यून्' यहां संप्रसारण होकर 'यु+उ+नः' इस अवस्था में  
सर्ववर्णदीर्घ एकादेश हो जाता है ॥



यूना । युवभ्याम् । युवभिः । यूने । युवभ्याम् । युवभ्यः ।  
 यूः । युवभ्याम् । युवभ्यः । यूनः । यूनोः । यूनाम् । यूनि ।  
 यूनोः । युवसु ॥

मघवा । मघवानौ । मघवानः । मघवानम् । मघवानौ ।  
 मघोनः । मघोना । मघवभ्याम् । मघवभिः । मघोने । मघवभ्याम् ।  
 मघवभ्यः । मघोनः । मघवभ्याम् । मघवभ्यः । मघोनः । मघोनोः ।  
 मघोनाम् । मघोनि । मघोनोः । मघवसु । संबोधन में—  
 हे मघवन् । हे मघवानौ । हे मघवानः ॥

५३५—मघवा बहुलम् ॥ १३१ ॥ अ० ६ । ४ । १२८ ॥

मघवन् इस अङ्ग को तृ आदेश बहुल करके हो ।

जैसे—‘मघवत्+सु’ यहां ऋकार की इत्संज्ञा, लोप, ‘नुम्’  
 और उपधादीर्घ आदि कार्य्य होकर—मघवान् । मघवन्तौ ।  
 मघवन्तः । मघवन्तम् । मघवन्तौ । मघवतः<sup>३</sup> । मघवता ।

१. नुम्—( उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७ । १ । ७० )

नामिक—११३ ॥

२. उपधा दीर्घ—( सर्वनामस्थाने धासम्बुद्धौ ॥ ६ । ४ । ८ )

नामिक—१४६ ॥

३. ( श्रयुवमेवोनामतद्धिते ॥ ६ । ४ । १३३ ) इस सूत्र में ‘मघवन्’

शब्द के नकारान्त निर्देश से इनके तृभाव अर्थात् मघवत् शब्द  
 को संप्रसारण नहीं होता । अथवा ‘श्रयुव०’ इस सूत्र में  
 ( अल्लोपोऽनः ॥ ६ । ४ । १३४ ) इस उत्तरसूत्र से ‘अनः’

इस पद का आकर्षण करके, श्र, युव, मघव, इत्यादि नकारान्त

शब्दों ही को संप्रसारण होता है ॥

‘मघवत्+भ्याम्’ यहां जश् होके—मघवद्भ्याम् । मघवद्भि  
इत्यादि ॥

नकारान्त नपुंसकलिङ्ग सामन् शब्द—

‘सामन्+सु’ यहां सुलोप<sup>१</sup> और नलोप<sup>२</sup> होकर—साम ।  
‘सामन्+औ’ औकार के स्थान में शी<sup>३</sup> आदेश और विकल्प<sup>४</sup>  
करके आकार का लोप<sup>५</sup> होकर—साम्नी ; सामनी ।  
‘सामन्+जस्’ शि<sup>६</sup> आदेश और नान्त की उपधा को दीर्घ<sup>६</sup>  
होके—सामानि । फिर भी—साम । साम्नी ; सामनी । सामानि ।  
आगे ‘राजन्’ शब्द के समान इसके प्रयोग जानने चाहिये ॥

संबोधन में इतना विशेष है कि—

५३६-वा०-वा नपुंसकानाम् ॥ १३२ ॥

अ० ८।२।८।

‘संबुद्धि’ में नपुंसकलिङ्ग शब्दों में नकार का लोप विकल्प करके  
होवे । —हे साम; हे सामन् ॥

१. सुलोप—(स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७।१।२३) नामिक—७२ ॥

२. नलोप—( नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ॥ ८।२।७ )  
नामिक ६८ ॥

३. शी आदेश—( नपुंसकाच्च ॥ ७।१।१६ ) नामिक—४२ ॥

४. अलोप विकल्प—( विभाषा द्वयोः ॥ ६।४।१३६ )  
नामिक—७६ ॥

५. शि आदेश—( जश्शसोः शिः ॥ ७।१।२० ) नामिक—४३

६ नान्तोपधा दीर्घ—(सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ॥ ६।४।८)  
नामिक—४६ ॥



इसी प्रकार—सीमन्; नामन्; व्योमन्; रोमन्; लोमन्; पामन्, इत्यादि शब्दों के रूप भी जानने चाहिये ॥

और जो—कर्मन्; चर्मन्; भस्मन्; जन्मन्; शर्मन्, इत्यादि मकारान्त संयोगवाले नकारान्त नपुंसक शब्द हैं, उनके प्रयोग सर्वनामस्थान में 'सामन्' शब्द के समान और अन्य विभक्तियों में 'आत्मन्' शब्द के समान समझने चाहिये। जैसे—कर्मणा, इत्यादि ॥

नकारान्त पुल्लिङ्ग वृत्रहन् शब्द—

'वृत्रहन्+सु' यहां (सौ च ॥ ६। ४। १३) इस (ना०-१२७) सूत्र से दीर्घ होके—वृत्रहा ॥

'वृत्रहन्+औ'—

५३७—एकाजुत्तरपदे णः ॥ १३३ ॥ अ० ८। ४। १२ ॥

जिस समास में एकाच् शब्द उत्तरपद हो, उसमें पूर्वपदस्वर रेफ बकार से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को एकारादेश हो।

जैसे—वृत्रहणौ । वृत्रहणः । वृत्रहणम् । वृत्रहणौ ॥

'वृत्रहन्+शस्' यहां हन् के अकार का लोप होकर—

५३८—हो हन्तेऽर्जिज्ञेषु ॥ १३४ ॥ अ० ७। ३। ५४ ॥

मित् शित् प्रत्यय वा नकार परे हो तो हन् धातु के हकार को घकारादेश हो।

अलोप—(अल्लोपोऽनः ॥ ६। ४। १३६) नामिक—७५ ॥

वृत्रघ्नः<sup>१</sup> । वृत्रघ्ना । वृत्रहभ्याम् । वृत्रहभिः । वृत्रघ्ने  
 वृत्रहभ्याम् । वृत्रहभ्यः । वृत्रघ्नः । वृत्रहभ्याम् । वृत्रहभ्यः  
 वृत्रघ्नः । वृत्रघ्नोः । वृत्रघ्नाम् । वृत्रघ्निः वृत्रहणि । वृत्रघ्नोः  
 वृत्रहसु । हे वृत्रहन् । हे वृत्रहणौ । हे वृत्रहणः ॥

इसी प्रकार—ब्रह्मन्, भ्रूणहन्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग  
 समझने चाहिये ॥

नकारान्त नुसकलिङ्ग अहन् शब्द—

‘अहन्+सु’—

५३९—अहन् ॥ १३५ ॥ अ० ८ । २ । ६८ ॥

पदान्त में अहन् शब्द को रु आदेश हो ।

विसर्जनीय होके—अहः ॥

‘अहन्+औ’—‘सामन्’ शब्द के समान—अह्नी; अहनी  
 अहानि । फिर भी—अहः । अह्नी; अहनी । अहानि । अह्ना  
 ‘अहन्+भ्याम्’ यहां भी नकार को रु, उसके रेफ को उकार  
 और अकार उकार को गुण एकादेश होके—अहोभ्याम्  
 अहोभिः । अहे । अहोभ्याम् । अहोभ्यः । अहः । अहोभ्याम्  
 अहोभ्यः । अहः । अहोः । अहाम् । अहिः; अहनि । अहोः  
 अहस्सु; अहःसु ॥

यद्यपि ‘णिनि’ तथा ‘इनि’ प्रत्ययान्त अनेक तकारान्त शब्दों  
 में कुछ विशेष नहीं, तथापि उनमें से एक के प्रयोग लिखते हैं—

१. ‘वृत्रहन्’ इति अवस्था में ( अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ १।१।२१ )  
 सन्धि०—२४ इस परिभाषा से अलोप स्थानिवत् हो, तो नकार  
 के परे ‘ह’ न मिले । यहां हकार को कुत्वविधानसामर्थ्य से  
 अलोप स्थानिवत् नहीं होता ॥



इन्नन्त पुँल्लिङ्ग दण्डिन् शब्द—

‘दण्डिन्+सु’ यहां ( सौ च ॥ ६ । ४ । १३ ) इस ( ना०—१२७ ) सूत्र से दीर्घ होंगे—दण्डी । दण्डिनौ । दण्डिनः । दण्डिनम् । दण्डिनौ । दण्डिनः । दण्डिना । दण्डिभ्याम् । दण्डिभिः । दण्डिने । दण्डिभ्याम् । दण्डिभ्यः । दण्डिनः । दण्डिभ्याम् । दण्डिभ्यः । दण्डिनः । दण्डिनोः । दण्डिनाम् । दण्डिनि । दण्डिनोः । दण्डिषु । संबोधन में—हे दण्डिन् । हे दण्डिनौ । हे दण्डिनः ॥

इसी प्रकार — क्षनिन्; कुमारधातिन्; शीर्षधातिन्; उष्णभोजिन्; साधुकारिन्; ब्रह्मवादिन्; ध्वाङ्चराविन्; स्थण्डिलशायिन्; पण्डितमानिन्; सोमयाजिन्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग जानने चाहिये ॥

‘दण्डिन्’ आदि शब्द यदि किसी प्रकार नपुंसकलिङ्ग में भी आवें, तो उनके प्रयोग प्रायः ‘वारि’ शब्द के समान समझने चाहिये । परन्तु षष्ठीविभक्ति के बहुवचन में दण्डिन् आदि नकारान्त शब्दों को दीर्घ नहीं होगा ॥

नकारान्त—पञ्चन्; सप्तन्; और अष्टन्, इत्यादि बहुवचनात् संख्यावाची शब्द तीनों लिङ्गों में समान ही होते हैं—

‘अष्टन्+जस्’—

५४०—अष्टन् अ विभक्तौ ॥ १३६ ॥ अ० ७ । २ । ८४ ॥

विभक्तिमात्र के परे अष्टन् शब्द को आकारादेश हो ।

यद्यपि सूत्र में विकल्प ग्रहण नहीं है तथापि ( अष्टाभ्यः औश् १७ । १ । २१ ) इस ( ना०—१३७ ) सूत्र में अकारान्त अष्टन्

शब्द के ग्रहण से सूचित होता है कि अष्टन् शब्द को आकारान्त विकल्प करके होता है। जैसे—‘अष्टा+जस्’; ‘अष्टन्+जस्’ इस अवस्था में—

५४१—अष्टाभ्य औच् ॥ १३७ ॥ अ० ७।१।२१ ॥

जिसमें आकारादेश किया हो ऐसे अष्टन् शब्द से परे और शस् विभक्ति को औकारादेश हो।

वृद्धि एकादेश होकर—अष्टौ। अष्टौ।

द्वितीय पक्ष में—

५४२—षणान्ता षट् ॥ १३८ ॥ अ० १।१।२४ ॥

षकारान्त और नकारान्त संख्यावाची शब्द षट्संज्ञक हो षट्संज्ञा होकर—

५४३—षट्भ्यो लुक् ॥ १३९ ॥ अ० ७।१।२२ ॥

षट्संज्ञक अर्थात् षकारान्त और नकारान्त संख्यावाची शब्दों से परे जस् और शस् विभक्ति का लुक् हो।

अष्ट तिष्ठन्ति। अष्ट पश्य ॥

अष्टभिः; अष्टाभिः। अष्टभ्यः; अष्टाभ्यः। अष्टभ्यः; अष्टाभ्यः।

‘अष्टन्+आम्’ इस अवस्था में—

५४४—षट्चतुर्भ्यश्च ॥ १४० ॥ अ० ७।१।२५ ॥

षट्संज्ञक और चतुर् शब्द से परे आम् विभक्ति को आगम हो।

५४५—नोपधायाः ॥ १४१ ॥ अ० ६।४।१७ ॥



नुद्सहित आम् विभक्ति परे हो, तो नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ हो ।

जैसे—‘अष्टान्+नाम्’ न लोप होकर अष्टानाम् ॥

अष्टसु; अष्टासु ॥

पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः । पञ्चभ्यः । पञ्चभ्यः । पञ्चानाम् । पञ्चसु ॥

इसी प्रकार—० सप्तन्; नवन्; दशन् इत्यादि षट्संज्ञक शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ।

तथा नकारान्तों में प्रतिदिवन् शब्द में कुछ विशेष हैं—

प्रतिदिवा । प्रतिदिवानौ । प्रतिदिवानः । प्रतिदिवानम् । प्रतिदिवानौ । ‘प्रतिदिवन्+शस्’ यहां (अल्लोपोऽन् ॥ ६ । ४ । १३४) इस ( ना०-७५ ) सूत्र से भसंज्ञा में अकार का लोप होके—

५४६—हलि च ॥ १४२ ॥ अ० ८ । २ । ७७ ॥

हलू परे हो, तो रेफान्त वकारान्त धातु की उपधा के इक् को दीर्घ हो ।

इससे भसंज्ञा में सर्वत्र ही दीर्घ होके—प्रतिदीवन् । प्रतिदीव्ना । प्रतिदीवन्ने । प्रतिदीवन् । प्रतिदीवन् । प्रतिदीव्नों । प्रतिदीव्नाम् । प्रतिदीवन्नि; प्रतिदीवनि । प्रतिदीव्नों ॥

इशन् शब्दों के प्रयोगों में—पथिन्; मथिन्; और अशुचिन्, इन तीन शब्दों के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं ।

१० यहां ( विभाषा डिश्योः ॥ ६ । ४ । १३६ ) नामिक—७६ इस

सूत्र से विकल्प करके अलोप होकर दो प्रयोग हो जाते हैं ॥

‘पथिन्+सु’

५४७-पथिमथ्यमुक्षामात् ॥ १४३ ॥ अ० ७ । १ । ८१ ॥

सु विभक्ति के परे पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन् इन शब्दों को आकारादेश हो ।

• यहां नकार के स्थान में आकारादेश होके—‘पथि+आ+सु’ इस अवस्था में—

५४८-इतोऽत्सर्वनामस्थाने ॥ १४४ ॥ अ० ७ । १ । ८१ ॥

सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे पथिन् आदि शब्दों के ईकार को अकारादेश हो ।

‘पथ+अ+आ+सु’ इस अवस्था में—

५४९-थो न्यः ॥ १४५ ॥ अ० ७ । १ । ८७ ॥

पथिन् और मथिन् शब्द के थकार को सर्वनामस्थान विभक्तियों के परे ‘न्य’ आदेश हो ।

इससे ‘न्य’ आदेश होकर—‘पन्थ+अ+आ+सु’ यहां अकार और आकार को दीर्घ एकादेश होके—पन्थाः ॥

‘पथिन्+औ’ यहां ईकार को अकार होकर—पन्थानौ पन्थानः । पन्थानम् ॥

‘पथिन्+शस्’—

५५०-भस्य टेलोपः ॥ १४६ ॥ अ० ७ । १ । ८८ ॥

भसंज्ञक पथिन् आदि शब्द की ‘टि’ अर्थात् इन्मात्र का लोप हो ।

जैसे—‘पथ+शस्’=पथः ॥



इसी प्रकार—मथिन् और ऋभुजिन् शब्दों के रूप भी समझने चाहिये ॥

पकारान्त अनियतलिङ्ग सुप् शब्द—

इसी प्रकार—तिप्; मिप्; कप्; शप्, आदि शब्दों के प्रयोग भी सम्भूत होने चाहिये । परन्तु अप् शब्द में कुछ विशेष है ॥

अप् शब्द से सातों विभक्तियों के बहुवचन ही आते हैं।  
 'अप्+जस्' यहां दीर्घ<sup>२</sup> होके—अपः। 'अप्+शस्' यहां कुछ  
 विशेष नहीं—अपः ॥

१. पृ को वृ—(कृत्वां जशोन्ते । द । २ । ३६ । खन्धि० — १८६ ॥

२. दीर्घं—(अप्तुनृत्स्वभृन्पृनेष्टृत्त्वृत्तृहोतृपोत्प्रशास्तृणाम् ॥

→ ६।४।११) नामिक—१०४५

‘अप+भिस्’ यहां—

५५१-अपो भि ॥ १४७ ॥ अ० ७।४।४८ ॥

भकारादि प्रत्यय के परे अप् शब्द के अन्त को तकार देश हो ॥

तकार के स्थान में दकार होकर—अद्भिः; । अद्भ्यः । अद्भ्यः ॥

अपाम् । अप्सु ॥

## अथ भकारान्तविषयः ॥

भकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग ककुभ् शब्द—

‘ककुभ्+सु’ यहां सु के सकार का लोप<sup>२</sup> होके भंका [ को वकार<sup>३</sup> और उस ] के स्थान में विकल्प करके भलों के चर्<sup>४</sup> होते हैं । जैसे—ककुब्; ककुप् । ककुभौ । ककुभा । ककुभम् । ककुभौ । ककुभः । ककुभा । ककुब्भ्याम् । ककुब्भिः । ककुभे । ककुब्भ्याम् । ककुब्भ्यः । ककुभः । ककुब्भ्याम् । ककुब्भ्यः । ककुभः । ककुभोः । ककुभाम् । ककुभिः । ककुभोः । ककुप्सु ॥

१. ‘ककुभ्’ यह दिशा का नाम है ॥

२. स् का लोप—(हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्वपृक्तं) हल् । ६।१।६८) नामिक—५० ॥

३. भ् को व्—(भलां जशोऽन्ते ॥ ८।२।३६) सन्धि—१८६ ॥

४. चर् विकल्प—(वावसत्ने ॥ ८।४।५५) नामिक—१११



इसी प्रकार—त्रिष्टुम्, अनुष्टुम्, आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥

## अथ रेफान्तविषयः ॥

रेफान्त नियतस्त्रीलिङ्ग गिर शब्दे—

‘गिर्+सु’ यहां भी सकार का लोप होकर—

५५२—वोरूपधाया दीर्घ इक्ः ॥ १४८ ॥ अ० ८ । २ । ७६ ॥

जो पदान्त में रेफवकारान्त [ रेफ तथा वकारान्त ] धातु की उपधा इक्, उसको दीर्घ हो ।

गीः । गिरौ । गिरः । गिरम् । गिरौ । गिरः । गिरा । गीर्भ्याम् । गीर्भिः । गिरे । गीर्भ्याम् । गीर्भ्यः । गिरः । गीर्भ्याम् । गीर्भ्यः । गिरः । गिरोः । गिराम् । गिरि । गिरोः ॥

‘गिर्+सु’ यहां खर् प्रत्याहार के परे रु के स्थान में विसर्जनीय पाते हैं । इसलिये यह उत्तर सूत्र नियमार्थ है—

५५३—रोः सुपि ॥ १४९ ॥ अ० ८ । ३ । १६ ॥

सुप् अर्थात् सप्तमी बहुवचन के परे रेफ के स्थान में विसर्जनीय हों, तो रु के रेफ ही को हों ।

इससे ‘गिर्’ इसके रेफ को विसर्जनीय न हुए । उपधा को दीर्घ और सकार को मूर्द्धन्यादेश होके—गीर्षु ॥

१. विसर्जनीय—( खर्वसानयोविसर्जनीयः ॥ ८ । ३ । १५ )

नामिक—२५८ ॥

२. सू को ष—(आदेशप्रत्यययोः ॥ ८ । ३ । १६ ) नामिक—३६ ॥

इसी प्रकार—धुर; पुर; तुर; भुर; जूर; तूर, इत्यादि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥

परन्तु रेफान्त शब्दों में चतुर् शब्द के प्रयोग विशेष होते हैं। इस शब्द से बहुवचन विभक्ति ही आती है। और तीनों लिङ्गों में इसका प्रयोग किया जाता है—

‘चतुर्+जस्’

५५४-चतुरनडुहोरमुदात्तः ॥१५०॥ अ० ७।१।२५।

जो सर्वनामस्थान विभक्ति परे हो, तो चतुर् और अनडु शब्द को आम् का आगम और यह उदात्त भी हो।

आम् आगम तु से परे होकर—‘चतु+आम्+र्+जस्’ यणादेश, विसर्जनीय और इत्संज्ञादि कार्य्य होकर—चत्वारः ॥

‘चतुर्+शस्=चतुरः’, पुल्लिङ्ग में ऐसे प्रयोग होते हैं। नपुंसकलिङ्ग में जस् और शस् विभक्ति के स्थान में शि आदेश हो जाता है—चत्वारि। चत्वारि। स्त्रीलिङ्ग में चि चतुर, शब्द को तिस्र और चतस्र आदेश होजाते हैं। यह सब व्यवस्था ऋकारान्त विषय में कह चुके हैं ॥

चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः ॥

‘चतुर्+आम्’ यहां आम् विभक्ति को ‘नुट्’ का आगम होकर—

१. आम् को नुट्—(चट्चतुर्भ्यश्च ॥ ७।१।२५) नामिक—१४० ॥



५५५—रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ १५१ ॥

अ० ८।४।१ ॥

एकपद में रेफ और षकार से परे नकार को एकारादेश हो ।

इससे एकार और उसको द्वित्व होजाता है । चतुर्णाम् । चतुर्षु ॥

उक्त 'त्रि' और चतुर् शब्द किसी शब्द के साथ बहुव्रीहि समास में हों; तो सब वचनों में होते हैं । जैसे—प्रियचतुर्—

प्रियचत्वारः । प्रियचत्वारौ । प्रियचत्वारः । प्रियचत्वारम् । प्रियचत्वारौ । प्रियचतुरः । प्रियचतुरा । प्रियचतुर्भ्याम् । प्रियचतुर्भिः । प्रियचतुरे । प्रियचतुर्भ्याम् । प्रियचतुर्भ्यः । प्रियचतुरः । प्रियचतुर्भ्याम् । प्रियचतुर्भ्यः । प्रियचतुरः । प्रियचतुरोः । प्रियचतुराम् । प्रियचतुरि । प्रियचतुरोः । प्रियचतुर्षु । संबुद्धि के परे (अम् संबुद्धौ ॥ ७।१।६६) इस सूत्र से अम् का आगम होकर—हे प्रियचत्वारः । हे प्रियचत्वारौ । हे प्रियचत्वारः ॥

'त्रि' शब्द के प्रयोग इकारान्त में नहीं लिखे, संख्यावाची के सम्बन्ध से यहां लिखते हैं ।

इकारान्त संख्यावाची नियतबहुवचनान्त 'त्रि' शब्द—

'त्रि+जस्' बहुवचन में (जसि च ॥ ७।३।१०६) इस (ना०-५७) सूत्र से गुण होके—त्रयः । 'त्रि+शस्' = त्रीन् । नपुंसकलिङ्ग

१. द्वित्व—(अचो रषाभ्यां द्वे ॥ ८।४।४५) सन्धि०—२२० ॥

में 'जस्' और 'शस्' विभक्ति को शि आदेश, नुम् का आणम् और दीर्घ होके—त्रीणि । त्रीणि । त्रिभिः । त्रिभ्यः । त्रिभ्यः ॥

'त्रि+आम्' आम विभक्ति के परे नुद् का आगम होके—  
'त्रि+नाम्' यहां—

५५६—त्रेस्त्रयः ॥ १५२ ॥ अ० ७ । १ । ५३ ॥

नुद् सहित आम् विभक्ति परे हो, तो त्रि शब्द को त्रय आदेश हो ।

त्रयाणाम् । त्रिषु ॥

**अथ वकारान्तविषयः ॥**

वकारान्त नियतस्त्रीलिङ्ग दिव् शब्द—

'दिव्+सु' धंहां—

५५७—दिव् औत् ॥ १५३ ॥ अ० ७ । १ । ८४ ॥

सु विभक्ति के परे दिव् शब्द को औकारादेश हो ।

इससे वकार के स्थान में औ होकर—'दि+औ+सु' यणादेश होके—द्यौः ॥

दिवौ । दिवः । दिक्म् । दिवौ । दिवः । दिवा । दिव्-  
स्थाम्—

५५८—दिव् उत् ॥ १५४ ॥ अ० ६ । १ । १६६ ॥ <sup>२६</sup>

पदान्त में दिव् शब्द के वकार को उत् आदेश हो ।

वकार को उकार और पूर्व को यणादेश होकर—द्व्युभ्याम् ।

१. यह प्रकाशमान पदार्थ का नाम है ॥



द्व्युभिः । दिवे । द्व्युभ्याम् । द्व्युभ्यः । दिवः । द्व्युभ्याम् ।  
द्व्युभ्यः । दिवः । दिवोः । दिवाम् । दिवि । दिवोः । द्व्युषु ॥

अथ शकारान्तविषयः ॥

शकारान्तं स्त्रीलिङ्गं दिश् शब्द—

‘दिश्+सु’ पदान्त में कुत्व<sup>२</sup> होकर—दिक् । दिग् । दिशौ  
दिशः । दिशम् । दिशौ । दिशः । दिशा । दिग्भ्याम् । दिग्भिः ।  
दिशे । दिग्भ्याम् । दिग्भ्यः । दिशः । दिग्भ्याम् । दिग्भ्यः । दिशः ।  
दिशोः । दिशाम् । दिशि । दिशोः । ‘दिक्+सु’ यहां भी प्रत्यय  
सकार को मूर्द्धन्य षकार होकर—दिक्षु ॥

इसी प्रकार—विशः । लिशः । घृतस्पृशः । दृशः । कीदृशः  
ईदृशः । सदृशः । तादृशः । यादृशः । एतादृशः । त्यादृशः, इत्यादि शब्दों  
के प्रयोग समझने चाहिये ॥

वेद में यह विशेष है कि—

५५६—दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि ॥ १५५ ॥

अ० ७ । १ । ८३ ॥

वेद में दृगन्त, स्ववस् और स्वतवस् शब्दों को सुविभक्ति  
के परे नुम् का आगम हो ।

जैसे—ईदृङ् । कीदृङ् । यादृङ् । तादृङ् । सदृङ्, इत्यादि ।

१. ‘दिश्’ यह शब्द क्तिन् प्रत्ययान्त है ॥

२. कुत्व—( क्तिन् प्रत्ययस्य कुः ॥ ८ । २ । ६२ ) नामिक—१५५  
इस सूत्र से ॥

‘स्ववस्’ और ‘स्वतवस्’ इन दोनों के प्रयोग सकारान्तों देख लेना ॥

परन्तु इन तालव्यान्त शब्दों में यदि कोई शब्द नपुंसकलिङ्ग में भी आवे तो उसके प्रयोग इस प्रकार होंगे—

शकारान्त नपुंसकलिङ्ग सदृश् शब्द—

सदृक्; सदृग् । सदृशी । सदृशि । फिर भी—सदृक् । सदृग् । सदृशी । सदृशि । सदृशा, इत्यादि पूर्ववत् ॥

अथ सकारान्तविधयः ॥

सकारान्त नियतपुल्लिङ्ग चन्द्रमस् शब्द—

‘चन्द्रमस्+सु’ यहां दीर्घ<sup>१</sup> होकर—चन्द्रमाः । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसम् । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः । चन्द्रमसा । चन्द्रमस+भ्याम्’ यहां सकार को रु<sup>२</sup> और रु को उ<sup>३</sup> आदेश होकर—चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभिः । चन्द्रमसे । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसः । चन्द्रमोभ्याम् । चन्द्रमोभ्यः । चन्द्रमसः । चन्द्रमसोः । चन्द्रमसाम् । चन्द्रमसि । चन्द्रमसोः । चन्द्रमस्तु । चन्द्रमःसु ॥

इसी प्रकार—जातवेदस्; विश्वयशस्; द्रविणोदस् । विश्ववेदस्; विश्वभोजस्; अङ्गिरस्; नोधस्; पुरोधस् ।

१. दीर्घ—(अत्वसन्त्य चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४) नामिक—१२२ ॥

२. स् को रु—(ससजुषो रुः ॥ ८ । २ । ६६) नामिक—१६ ॥

३. रु को उ—(इशि च ॥ ६ । १ । ११३) सन्धि—१५६ ॥



वयोधस्; वेधस्; नृचक्षस्, इत्यादि पुँल्लिङ्ग शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥

पूर्व जितने शब्द लिखे हैं, वे सब असुनप्रत्ययान्त हैं। असुनप्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों में विशेष यह है कि—

सकारान्त पुँल्लिङ्ग उशनस् शब्द—

‘उशनस्+सु’ यहां अन्य को अनङ्, आदेश, अङ्मात्र को इत्संज्ञा और एकदेश होकर—‘उशनन्+सु’ यहां नान्त अङ्ग की उपधा को दीर्घ<sup>२</sup> और विभक्ति का लोप होके—उशना। और संबुद्धि में—हे उशनन्<sup>३</sup>; हे उशनः; हे उशनः। हे उशनसौ। हे उशनसः। अन्य सब प्रयोग ‘चन्द्रमस्’ शब्द के समान जानो ॥

इसी के समान—अनेहस्; पुरुदंशस्, इन दोनों के भी प्रयोग जानने चाहिये। परन्तु संबुद्धि में जो ‘उशनस्’ शब्द के तीन प्रयोग लिखे हैं, वैसे इन दोनों के नहीं होंगे, क्योंकि उशनस् शब्द को संबुद्धि में भी विकल्प करके अनङ्आदेश और नलोप कहा है। इन दोनों को नहीं ॥

सकारान्त शब्द बहुत प्रकार के होते हैं। उनमें से असुनप्रत्ययान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों को उक्त रीति से जानना चाहिये ॥

१. अनङ्—(अदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च ॥ ७। १। ६४)

नामिक—६८ ॥

२. नान्त दीर्घ—(नोपधायाः ॥ ६। ४। ७) नामिक—१४१ ॥

३. (उशनसः संबुद्धावपि पक्षेऽनङ्गिष्यथे ॥ ८। १। ६४) इस वार्तिक से विकल्प होकर तीन प्रयोग बन जाते हैं ॥

सकारान्त पुल्लिङ्ग विद्वस् शब्द—

'विद्वस्+सु' यहां 'नुम्' का आगम होके—'विद्वन्+सु' इस अवस्था में दीर्घ,<sup>१</sup> सु के सकार का लोप<sup>३</sup> और संयोगान्त लोप<sup>४</sup> होकर—विद्वान् । विद्वान्सौ । विद्वान्सः । विद्वान्सम् । विद्वान्सौ ॥

'विद्वस्+शस्' यहां—

५६०—वसोः संप्रसारणम् ॥ १५६ ॥ अ० ६।४।१३१॥

भसंज्ञक वसुप्रत्ययान्त शब्दों को संप्रसारण हो ।

वकार को उ संप्रसारण और पूर्वरूप होकर—'विदुस्+शस्' इस अवस्था में वसु के सकार को मूर्द्धन्य आदेश हो जाता है—विदुषः । विदुषा ॥

विद्वस्+भ्याम्—

५६१—वसुसंसुध्वंस्वनडुहां दः ॥ १५७ ॥

अ० ८।२।७२ ॥

१. नुम्—( उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७ । १ । ७० )  
नामिक—११३ ॥०

२. दीर्घ—(सान्तमहतः संयोगस्य ॥ ६।४।१०) नामिक—१२४ ॥

३. स् का लोप—( हल्ङ्याबभ्यो दीर्घासुप्ति० ॥ ६।१।६८ )  
नामिक—२० इस सूत्र से ॥

४. संयोगान्त लोप—( संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८।२।२३ )  
नामिक—११४—इससे विद्वस् शब्द के सकार का लोप होता है ॥



वसुप्रत्ययान्त, संसु, ध्वंसु और अनडुह्, इन शब्दों के पदान्त सकार हकार को दकारादेश हो ।

विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भिः ॥

विदुषे । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्यः । विदुषः । विद्वद्भ्याम् । विद्वद्भ्यः । विदुषः । विदुषोः । विदुषाम् । विदुषि । विदुषोः । विद्वत्सु । संबोधन में—हे विद्वन् । हे विद्वांसौ । हे विद्वांसः ॥

अब—पर्यध्वस्—

यह शब्द ध्वंसुधातु से बना है । इसको भी पदान्त में उक्त सूत्र से दकारादेश होजाता है । जैसे—पर्यध्वत् । पर्यध्वद् । पर्यध्वसौ । पर्यध्वसः । पर्यध्वसम् । पर्यध्वसौ । पर्यध्वसः । पर्यध्वसा । पर्यध्वद्भ्याम् । पर्यध्वद्भिः । पर्यध्वसौ । पर्यध्वद्भ्याम् । पर्यध्वद्भ्यः । पर्यध्वसः । पर्यध्वद्भ्याम् । पर्यध्वद्भ्यः । पर्यध्वसः । पर्यध्वसोः । पर्यध्वसाम् । पर्यध्वसि । पर्यध्वसोः पर्यध्वत्सु ॥

इसी प्रकार—उखास्त्रस् आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥

ऊषिवस्—

यह कसुप्रत्ययान्त, सकारान्त शब्द है—ऊषिवन् । ऊषिवांसौ । ऊषिवांसः । ऊषिवांसम् । ऊषिवांसौ । ऊषुषः । ऊषुषा । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भिः । ऊषुषे । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊषिवद्भ्याम् । ऊषिवद्भ्यः । ऊषुषः । ऊषुषोः । ऊषुषाम् । ऊषुषि । ऊषुषोः । ऊषिवत्सु । हे ऊषिवन् । हे ऊषिवांसौ । हे ऊषिवांसः । इसके प्रयोगों में सब कार्य 'विद्वस्' शब्द के समान होते हैं ॥

इसी प्रकार—तस्थिवस्; पपिवस्; सेदिवस्; शुश्रुवस्; उपेयिवस्, इत्यादि कसुप्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग सनभूने चाहिये।

इस प्रकार के सकारान्त शब्द ईयसुन्प्रत्ययान्त होते हैं।

जैसे—श्रेयस्; अल्पीयस्; पपीवस्; कनीयस्; यवीयस्, इत्यादि। इन शब्दों के प्रयोग प्रथमा के एकवचन से लेकर पांच वचनों में 'विद्वस्' शब्द के समान होते हैं—

'यवीवस्+सु' = यवीयान् । यवीयांसौ । यवीयांसः । यवीयांसम् । यवीयांसौ । यवीयसः । यवीयसा । यवीयोभ्याम् । यवीयोभिः । यवीयसे । यवीयोभ्याम् । यवीयोभ्यः । यवीयसि । यवीयोभ्याम् । यवीयोभ्यः । यवीयसः । यवीयसोः । यवीयसाम् । यवीयसि । यवीयसोः । यवीयस्सु; यवीयःसु । हे यवीयन्, इत्यादि ॥

इसी प्रकार ईयसुन्प्रत्ययान्त सब शब्दों के प्रयोग जानने उचित हैं ॥

ईयसुन् और कसुप्रत्ययान्त शब्द जब स्त्रीलिङ्ग में आते हैं, तब ईकारान्त हो जाते हैं। जैसे—विदुषी, इत्यादि ॥

और असुन्प्रत्ययान्त अर्थात्—अप्सरस्; उषस्; सुमनस्, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दों के प्रयोग 'चन्द्रमस्' शब्द के तुल्य होते हैं ॥

असुन्प्रत्ययान्त दो स्वरवाले शब्द प्रायः नपुंसकलिङ्ग में आते हैं। इनमें इतना भेद है कि—

पयस्—



‘पयस्+सु’ सु लोप होकर—पयः । ‘पयस्+औ’ यहां औ के स्थान में ‘शी’ होकर—पयसी । ‘पयस्+जस्’ यहां भी जस् के स्थान में ‘शि’ और नुम् का आगम होकर—पयांसि । फिर भी पयः । पयसी । पयांसि । अन्य प्रयोग ‘चन्द्रमस्’ शब्द के समान समझने चाहिये ॥

इसी प्रकार मनस्; भूयस्; पाथस्; वचस्; अम्भस्; एनस्; इत्यादि शब्दों के प्रयोग विचारने योग्य हैं ॥

खवस्; स्वतवस्, इन दो सकारान्त शब्दों को वेदविषय में सु निभक्ति के परे लुम् का आगम होजाता है । जैसे—  
खवान् । स्वतवान् ॥

५६२—वा०—स्ववस्स्वतवसोर्मास उषसश्च छन्दसि  
त इष्यते ॥ १५८ ॥ अ० ७ । ४ । ४८ ॥

भक्तारादि प्रत्यय परे हों, तो वैदिकप्रयोग विषय में खवस्, स्वतवस्, मास्, उषस्, इन शब्दों को तकारादेश हो ।

जैसे—खवद्भिः । खवद्भ्यः । स्वतवद्भिः । स्वतवद्भ्यः ।  
माद्भिः । उषद्भिः, इत्यादि ॥

१. औ को शी—(नपुंसकाच्च ॥ ७ । १ । १६) नामिक—४२ ॥

२. जस् को शि—(जश्शसोः शिः ॥ ७ । १ । २७) नामिक—४३ ॥

३. नुम्—(अगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ॥ ७ । १ । ७०)  
नामिक—११३ ॥

४. नुम्—(इकस्ववस्स्वतवसां छन्दसि ॥ ७ । १ । ८३) नामिक—१५५ ॥

एक प्रकार के सकारान्त शब्द इस्, उस् प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे—वपुस्; यजुस्; अरुस्; धनुस्; आयुस्; ज्योतिस्; अर्चिस्; शोचिस्; बर्हिस्; हविस्; सर्पिस्, इत्यादि सकारान्त शब्दों में कोई विशेष सूत्र नहीं घटते। और इन शब्दों के अन्त्य औपदेशिक सकार को पीछे मूर्द्धन्यादेश हो जाता है। ये शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं, परन्तु लिङ्गानुशासन की रीति से अर्चिस् और हविस् इन शब्दों के प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में भी होते हैं ॥

### सकारान्त नपुंसकलिङ्ग यजुस् शब्द—

‘यजुस्+सु’ यहां ‘यस्’ शब्द के समान सब कार्य होकर—यजुः<sup>१</sup> यजुषी<sup>१</sup> यजूषि। फिर भी—यजुः। यजुषी। यजूषि। यजुषा। ‘यजुस्+भ्याम्’ यहां सकार को ‘ह’ होके अन्य कार्यों की प्राप्ति न होने से रेफ उपर चढ़ जाता है—यजुर्भ्याम्। यजुर्भिः। यजुषे। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुर्भ्याम्। यजुर्भ्यः। यजुषः। यजुषोः। यजुषाम्। यजुषि। यजुषोः। यजुषु; यजुःषु ॥

### यथा इसन्त—ज्योतिस्—

ज्योतिः<sup>१</sup> ज्योतिषी। ज्योतीषि। फिर भी—ज्योतिः। ज्योतिषी। ज्योतीषि। ज्योतिषा। ज्योतिर्भ्याम्। ज्योतिर्भिः।

१. स् को मूर्द्धन्य ष—( आदेशप्रत्यययोः ॥ ८. ३. ५६ )  
नामिक—३६ ॥

२. स् को ह—( सप्तम्यो लुः ॥ ८. २. ६६ ) नामिक—१६ ॥



ज्योतिषे । ज्योतिर्भ्याम् । ज्योतिर्भ्यः । ज्योतिषः । ज्योतिर्भ्याम् ।  
ज्योतिर्भ्यः । ज्योतिषः । ज्योतिषोः । ज्योतिषाम् । ज्योतिषि ।  
ज्योतिषोः । ज्योतिषु; ज्योतिःषु ॥

स्त्रीलिङ्ग में इतना भेद है कि—छदिस—

छदिः । छदिषी । छदिषः । फिर भी—छदिः । छदिषी ।  
छदिषः । आगे 'यजुस्' और 'ज्योतिस्' शब्द के समान जानो ॥

अथ षकारान्तविषयः ॥

षकारान्त स्त्रीलिङ्ग प्रावृष् शब्द—

'प्रावृष्+सु' यहां षकार को डकार' और विकल्प से  
चर् होकर प्रावृद्; प्रावृड् । प्रावृषौ । प्रावृषः । प्रावृषेम् ।  
प्रावृषौ । प्रावृषः । प्रावृषा । प्रावृड्भ्याम् । प्रावृड्भिः । प्रावृषे ।  
प्रावृड्भ्याम् । प्रावृड्भ्यः । प्रावृषः । प्रावृड्भ्याम् । प्रावृड्भ्यः ।  
प्रावृषः । प्रावृषोः । प्रावृषाम् । प्रावृषि । प्रावृषोः । प्रावृट्सु;  
प्रावृट्सु ॥

इसी प्रकार—विपुष्; त्विष्; रुष्, इत्यादि शब्दों के प्रयोग  
जानने और ब्रह्मद्विष् आदि पुंलिङ्ग शब्दों के प्रयोग भी 'प्रावृष्'  
शब्द के समान समझने चाहिये ॥

परन्तु आशिष् शब्द में कुछ विशेष है—

'आशिष्+सु' यहां धातु की उपधा के इक् को दीर्घ

१. ष को ड्—(भलां जशोऽन्ते ॥ ८ । २ । ३६) सन्धि-१८६ ॥

२. विकल्प से चर्—(वावसाने ॥ ८ । ४ । ५५) नामिक-११२ ॥

होकर—आशीः। आशिषी। आशिषः। आशिषम्। आशिषो।  
आशिषः। आशिषा। आशीर्भ्याम्। आशीर्मिः। आशिषे।  
आशीर्भ्याम्। आशीर्भ्यः। आशिषः। आशीर्भ्याम्, इत्यादि ॥

संख्यावाची बहुवचनान्त षष् शब्द—

इससे बहुवचन विभक्ति ही आती है। 'षष्+जस्'  
'षष्+शस्' यहां जस् और शस् का लुक् होकर—षट्। षट्।  
षड्भिः। षड्भ्यः। षड्भ्यः। षष्+आम्' यहां नुट् का आगम  
होकर—'षष्+नाम्' षकार को ड् हो के—'षड्नाम्'। यहां  
अनाम्' इस प्रतिषेध से घुत्वनिषेध न हुआ, किन्तु टवर्ग  
डकार से परे तवर्ग नकार को एकार और डकार को परसवर्ग  
होकर—षण्णाम्। षट्सु; षट्सु ॥

अथ हकारान्तविषयः ॥

हकारान्त पुंलिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग गोदुह् शब्द—

'गोदुह्+सु'—

५६३—दोदर्धातोर्घः ॥ १५९ ॥ अ० ८।२।३२ ॥

१. यहां ( हलि च ॥ ८।२।७७ ) नामिक—१४२ इससे दीर्घ  
होता है ॥

२. जस् शस् का लुक्—( षड्भ्यो लुक् ॥ ७।१।२२ )  
नामिक—१३६ ॥

३. नुट् आगम—( षट्चतुर्थ्यश्च ॥ ७।१।५५ ) नामिक—१४८ ॥

४. 'अनाम्' यह प्रतिषेध ( न पदान्तादोरनाम् ॥ ८।४।४१ )  
सन्धि—२१४ इस सूत्र के विषय से ॥



भल् परे हो, वा पदान्त में दकारादि धातु के हकार को घकारादेश हो।

यहां पदान्त में घकार होकर—

५६४-एकाचो बशो भष् भषन्तस्य सध्वोः ॥१६०॥

अ० द। २। ३७ ॥

स्, ध्व परे हो वा पदान्त में एकाच् धातु का अवयव जो भषन्त बश्, उसको भष् आदेश हो।

यहां पदान्त में दकार को घकार होकर—‘गोधुघ्+सु’ घकार को जश् ग् और उसको विकल्प चर् होकर—  
गोधुक; गोधुग् ॥

गोधुहौ । गोदुहः । गोदुहम् । गोदुहौ । गोदुहः । गोदुहा ।  
गोधुग्भ्याम् । गोधुग्भिः । गोदुहे । गोधुग्भ्याम् । गोधुग्भ्यः ।  
गोधुहः । गोधुग्भ्याम् । गोधुग्भ्यः । गोदुहः । गोदुहोः ।  
गोधुहाम् । गोदुहि । गोदुहोः । गोधुज् । सम्बोधन में कुछ  
विशेष नहीं होता ॥

गुडलिङ्—

इस शब्द के प्रयोगों में इतना विशेष है कि हकार को घकारादेश नहीं होता—गुडलिङ्; गुडलिङ् । गुडलिङ्भ्याम् ।  
गुडलिङ्सु; गुडलिङ्सु ॥

१. घ को जश् ग्— भलां जशोऽन्ते ॥ द। २। ३६ )

सन्धि—१८६ ॥

२. विकल्प चर् (वाचस्पति ॥ द। ४। ५५ ) नामिक—११३ ॥

मित्रद्रुह्; उन्मुह्; घृतस्निह्; उत्स्नुह्, इन चार शब्दों में विशेष यह है कि—

५६५—वा दुह्मुह्णुह्णिहाम् ॥ १६१ ॥ अ० ८। २। ३३ ॥

जो भल परे वा पदान्त में हो, तो द्रुह्, मुह्, स्नुह्, स्निह् ये जिनके अन्त में हों, उनको विकल्प करके घकारादेश हो।

जिस पक्ष में घकार होता है, वहां 'गोदुह्' शब्द के समान प्रयोग बनते हैं। और जहां हकार बना रहता है, वहां 'गुडलिह्' शब्द के समान प्रयोग समझने चाहिये ॥

नियतस्त्रीलिङ्ग उपानह् शब्द—

उपानह् + सु' यहां—

५६६—नहो धः ॥ १६२ ॥ अ० ८। २। ३४ ॥

जो भल परे वा पदान्त में हो, तो नह् धातु के हकार को धकारादेश हो।

धकार को दकार और विकल्प चर् होकर—उपानत् उपानद् ॥

उपानहौ। उपानहः। उपानहम्। उपानहौ। उपानहः। उपानहा। उपानद्भ्याम्। उपानद्भिः। उपानहे। उपानद्भ्याम्। उपानद्भ्यः। उपानहः। उपानद्भ्याम्। उपानद्भ्यः। उपानहः। उपानहोः। उपानहाम्। उपानहि। उपानहोः। उपानत्सु ॥

इसी प्रकार—परीणह् आदि शब्दों के प्रयोग समझने चाहिये ॥



हकारान्त नियतपुल्लिङ्ग अनडुह् शब्द—

‘अनडुह्+सु’—

५६७—सावनडुहः ॥ १६३ ॥ अ० ७।१।८२ ॥

जो सु विभक्ति परे हो, तो अनडुह् शब्द को नुम् का आगम हो ।

इससे नुम् और संयोगान्त जोप होकर—‘अनडुन्’ ।  
यहां ‘आम् का आगम’ सर्वनामस्थान विभक्तियों में अन्त्य अच् से परे होता है—‘अनडु+आन्’ । यणादेश होकर—अनड्वान् ॥

अनड्वाहौ । अनड्वाहः । अनड्वाहम् । अनड्वाहौ ।  
अनडुहः । अनडुहा । ‘अनडुह्+भ्याम्’ यहां हकार को दकारादेश होकर—अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भिः । अनडुद्हे । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्यः । अनडुहः । अनडुद्भ्याम् । अनडुद्भ्यः । अनडुहः । अनडुहोः । अनडुहाम् । अनडुहि । अनडुहोः । अनडुत्सु ॥

[ संवुद्धि के परे ( अम् संवुद्धौ ॥ ७।१।६६ ), इस सूत्र से अम् का आगम होकर—हे अनड्वन् । हे अनड्वाहौ । हे अनड्वाहः ॥ ]

इति हकारान्तप्रकरणम् ॥

१. अम् का आगम ( चतुरनडुहोरासुदात्तः ॥ ७।१।६८ )  
नामिक—१५० ॥

२. हकार को द्—( वसुधसुध्वस्वनडुहां. देः ॥ ८।२।७२ )  
नामिक—१५७ ॥

# [ अथ पादादि शब्द प्रकरणम् ]

५६८-पद्मोमासहृदिशसन्यूषन्दोषन्यकज्जकम्भु-  
द्वज्जसाज्छस्प्रभृतिषु ॥ १६४ ॥ अ० ६, १, १३ ॥

इस सूत्र के यहां लिखने का प्रयोजन यह है कि इसमें जितने शब्द हैं, वे अकारान्तादि क्रमानुसार जहां २ लिखे जाते हैं, वहां २ यह सूत्र कई बार जनाना पड़ता, इस लिये यहां लिखा ।

इसमें—पाद; दन्त; मास; हृदय; उदक; आस्य, इतने शब्द अकारान्त । नासिका; निश, ये दो आकारान्त । असृज्, यह जकारान्त । यूष्; दोष्, ये दो षकारान्त । यकृत्; शकृत्, ये दो तकारान्त हैं ।

सर्वनामस्थान को छोड़ के अन्य विभक्तियों में पाद आदि शब्दों के स्थान में निम्नलिखित आदेश विकल्प करके जानने चाहिये ।

जैसे—पाद शब्द को 'पद'—

'पद+शस्'=पदः । पदा । पदभ्याम् । पद्भिः । पदे । पदभ्याम् । पदभ्यः । पदः । पदभ्याम् । पदभ्यः । पदः । पदोः । पदाम् । पदि । पदोः । पत्सु ॥

दन्त शब्द को 'दत्'—

दतः । दता । ददभ्याम् । दद्भिः । दते । ददभ्याम् । ददभ्यः । दतः । ददभ्याम् । ददभ्यः । दत्तः । दतोः । दताम् । दति । दतोः । दत्सु ॥



## नासिका शब्द को 'नस्'—

नसः । नसा । नोभ्याम् । नोभिः । नसे । नोभ्याम् । नोभ्यः ।  
 नसेः । नोभ्याभू । नोभ्यः । नसः । नसोः । नसाम् । नसि ।  
 नसोः । नस्सुः । नःसु ॥

## मास शब्द को 'मास्' हलन्त आदेश—

मासः । मासा । 'मास्+भ्याम्' यहाँ (भोभगोअघोअपूर्वस्य  
 योऽशि ॥ ८ । ३ । १७) इस सूत्र<sup>१</sup> से अवरणपूर्व रुको यकारा-  
 देश होकर (हूति सर्वेषाम् ॥ ८ । ३ । २२) इस सूत्र<sup>२</sup> से  
 यकार का लोप होगया । जैसे—माभ्याम् । माभिः । मासे ।  
 माभ्याम् । माभ्यः । मासः । माभ्याम् । माभ्यः । मासः । मासोः ।  
 मासाम् । मासि । मासोः । मास्सुः । माःसु ॥

और वेद में भकारादि विभक्तियों के परे इस् हलन्त 'मास्'  
 शब्द के सकार को तकारादेश<sup>३</sup> होजाता है । जैसे—मादभ्याम् ।  
 मादभिः । मादभ्याम् । मादभ्यः, इत्यादि ॥<sup>४</sup>

## हृदय शब्द को 'हृद्'—

हृदः । हृदा । हृदभ्याम् । हृदभिः । हृदे । हृदभ्याम् ।  
 हृदभ्यः । हृदः । हृदभ्याम् । हृदभ्यः । हृदः । हृदोः । हृदाम् ।  
 हृदि । हृदोः । हृत्सु ॥

१. सन्धि०—२४८॥

२. सन्धि०—२५४ ॥

३. स् को त्—(स्ववःस्वतवसोर्मास उषसश्च धेन्दसि त इष्यते ॥  
 ७ । ४ । ४८) नामिक—१५८ ॥ यह वार्तिक प्रथम [ पूर्व ]  
 'स्ववस्' शब्द पर लिख चुके हैं ।

## निशा शब्द को 'निश्'—

निशः। निशा। 'निश्+भ्याम्' यहां शकार को षू' और उसको डकारादेश<sup>१</sup> होकर—निङ्भ्याम्। निङ्भिः। निशे। निङ्भ्याम्। निङ्भ्यः। निशः। निङ्भ्याम्। निङ्भ्यः। निशः। निशोः। निशाम्। निशि। निशोः। निदत्सु; निदत्सु ॥

## असृज् शब्द को 'असन्' आदेश—

असन्। अस्ता। असभ्याम्। असभिः। अस्ने। असभ्याम्। असभ्यः। असन्। असभ्याम्। असभाः। अस्नः। अस्नोः। अस्नाम्। अस्नि; असनि<sup>३</sup>। अस्नोः। अससु ॥

यूष् शब्द को यूषन्; दोष् शब्द को दोषन्; यकृत् को यकन्; शकृत् को शकन्; उदक् को उदन; आस्य शब्द को आसन्। 'यूषन्' अप्रति सब शब्दों के प्रयोग 'असन्' शब्द के समान जानो ॥

पाद; दन्त; मास, इन तीन शब्दों के प्रयोग दूसरे पक्ष में अकारान्त पुँल्लिङ्ग 'पुरुष' शब्द के समान। हृदय; उदक; आस्य, इन तीनों के अकारान्त नपुंसकलिङ्ग 'धन' शब्द के समान।

१. श् को षू—(ब्रश्चअसृजसृजसृजयजराज्भ्राजच्छशां षः ॥ ८। २। ३६) नामिक—११६ ॥

२. षू को षू—(भूलां जशोऽन्ते ॥ ८। २। ३६) सन्धि०—१८६ ॥

३. यहां ( विभाषां डिश्योः ॥ ६। ४। १३६ ) नामिक—७६  
इस सूत्र से विकल्प करके अकार का लोप हो जाता है ॥



नासिका और निशा शब्द के प्रयोग 'कन्या' शब्द के समान ।  
 असृज् शब्द के प्रयोग 'ऋत्विज्' शब्द के समान । युष् शब्द  
 के प्रयोग 'प्रावृष्' शब्द के समान । दोष् शब्द के प्रयोग  
 'आशिष्' शब्द के समान, और यकृत्, शकृत्, शब्दों के प्रयोग  
 'उदशिवत्' शब्द के समान समझ लेने चाहिये ॥ \*

\* [इस प्रकरण के "पद्मो०" इस सूत्र की व्याख्या में संशोधकादि  
 जन्य प्रमाद से गत संस्करणों में तीन स्थानों पर अशुद्ध पाठ छपे दीखते  
 हैं—तैसे संवत् १९३८ के मुद्रित नामिक प्र० संस्करण पृष्ठ ४९ पंक्ति १५  
 में पाठ है:—पाद, दन्त, मास, हृदय, उदक, आसन ।

संवत् २००६ के संस्करण पृष्ठ ५७ पंक्ति ६ में पाठ होगया है:—पाद,  
 दन्त, मास, हृदय, उदक, आसन, आस्य, अर्थात् आसन के आगे आस्य  
 शब्द और जुड़ा मिलता है । हमने इस संस्करण पृष्ठ १०२ पंक्ति ७ में  
 शुद्ध पाठ केवल "आस्य" ही दिया है । पुनरच सं० १९३८ के  
 संस्क० पृ० ५० पंक्ति ६ तथा १६ में तथा सं० २००६ के संस्क० पृ०  
 ५८ पंक्ति ११ तथा १६ में अशुद्ध पाठ "आसन" शब्द के स्थान पर  
 क्रमशः "असृज्" तथा "आस्य" शुद्ध पाठ दे दिये हैं । देखिये पृ० १०४  
 पंक्ति क्रमशः ६ और १५ ॥

और जो काशिका में "आसन" शब्द को "आसन्" आदेश कहा है  
 वह भी प्रामादिक ही जानना चाहिये, क्योंकि 'आस्य' शब्द के स्थान पर  
 "आसन्" आदेश होता है न कि आसन शब्द के स्थान पर ॥ सं० ॥ ]

# [ अथ सर्वनामप्रकरणम् ]

अब इसके आगे सर्वनामवाची शब्द लिखेंगे [लिखते हैं]—  
सर्वादि शब्द तीनों लिङ्गों में आते हैं ।

प्रथम पुँल्लिङ्ग में सर्व—

‘सर्व+सु’=सर्वः । सर्वौ । ‘सर्व+जस्’—

५६६—जसः शी ॥ १६५ ॥ अ० ७ । १ । १७ ॥

जो अकारान्त सर्वनाम से परे जस् होवे, तो उसको शी  
आदेश होजावे ।

शकार की इत्संज्ञा ओर पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश  
होकर—सर्वे ॥

सर्वम् । सर्वौ । सर्वान् । सर्वेण । सर्वाभ्याम् । सर्वैः ॥

‘सर्व+ङे’—

५७०—सर्वनाम्नः स्मै ॥ १६६ ॥ अ० ७ । १ । १४ ॥

जो अदन्त सर्वनाम से परे ङे विभक्ति होवे, तो उसको स्मै  
आदेश हो जावे ।

जैसे—सर्वस्मै ॥

सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । सर्व+ङसि—

५७१—ङसिङ्योः स्मात्स्मिनी ॥ १६७ ॥

अ० ७ । १ । १५ ॥

जो अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि विभक्ति हो,  
तो इनको क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश हो ।



सर्वस्मात् ॥

‘सर्व+ङस्’ यहां स्य’ आदेश होकर—सर्वस्य । सर्वयोः ।  
‘सर्व+आम्’—

५७२—आमि सर्वनाम्नः सुट् ॥ १६८ ॥

अ० ७।१।५२ ॥

जो अवर्णान्त सर्वनाम से परे आम् विभक्ति हो, तो उसको सुट् आगम हो ।

‘सर्व+साम्’ यहां अङ्ग को एकारादेश<sup>१</sup> और सुट् के सकार को मूर्द्धन्यादेश<sup>२</sup> होकर—सर्वेषाम् ॥

‘सर्व+ङि’ उक्त सूत्र से ‘ङि’ को ‘स्मिन्’ आदेश होकर—सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु ॥

“नपुंसकलिङ्ग में—सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि फिर भी—सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि । आगे सब विभक्तियों में पुँलिङ्ग के समान जानना ॥”

स्त्रीलिङ्ग में—टाप् होकर अकारान्त सर्वादि सब शब्द आकारान्त होकर प्रयोगविषय में ‘कन्या’ शब्द के तुल्य होते हैं । जैसे—सर्वा । सर्वे । सर्वाः । सर्वाम् । सर्वे । सर्वाः । सर्वया । सर्वाभ्याम् । सर्वाभिः । ‘सर्वा+ङे’—

१. स्य—(टाङ्सिङ्सोमिनात्स्याः ॥ ७।१।१२ नामिक—२५

इससे यह आदेश हुआ है ॥

२. अ को ए—(बहुवचने ऋण्येत् ॥ ७।३।१०३) नामिक—३२

३. सु को ष—(आदेशप्रत्यययोः ॥ ८।३।५६) नामिक—३६ ॥

५७३-सर्वनाम्नः स्याद्द्वस्वश्च ॥ १६९ ॥

अ० ७।३।११४ ॥

जो सर्वादि आवन्त अङ्ग से परे डित् विभक्ति हो, तो उसको स्याद् का आगम हो, और सर्वनामस्थान को ह्रस्व भी होजावे।

‘सर्वस्या+ए’ पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होकर—सर्वस्यै । सर्वस्याः॥

सर्वाभ्याम् । सर्वाभ्यः । सर्वस्याः । सर्वयोः । सर्वासाम् । ‘सर्वस्या+ङि’ यहां आवन्त से परे ङि विभक्ति को ‘आम्’ आदेश होकर सवर्णदीर्घ एकादेश होजाता है—सर्वस्याम् । सर्वयोः । सर्वासु ॥

इसी प्रकार तीनों लिङ्गों में विश्व आदि गणपठित शब्दों के भी प्रयोग समझने चाहिये ॥

उभ शब्द नियतद्विवचन में आता है । इसकी सर्वनामसंज्ञा का प्रयोजन अकच् प्रत्यय होना है । जैसे—उभकौ । उभौ । उभाभ्याम् ३ । उभयोः २ ॥

उभय शब्द ‘सर्व’ शब्द के समान है । जैसे—उभयः । उभयौ । उभये, इत्यादि ॥

क्रतर; कतम; इतर; अन्य; अन्यतर, इन पांचों शब्दों के प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में कुछ विशेष होते हैं—

१. ङि विभक्ति-को ‘आम्’—( डेरान्नयान्नीभ्यः ॥ ७।३।११६ )

यह सूत्र प्रथम नामिक—५४ में लिख चुके हैं ॥



५७४-अद्भुतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ॥ १७० ॥

अ० ७।१।२५ ॥

जो डत्तर अर्थात् कतर आदि पांच नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान शब्दों से परे सु और अम् विभक्ति हों, तो इनके स्थान में अद्भु आदेश हो।

जैसे—‘कतर+सु’ ‘कतर+अम्’=कतरत्; कतरद् । इसी प्रकार—कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् ॥

इतर शब्द को वेद में कुछ विशेष है—

५७५-नेतराच्छन्दसि ॥ १७१ ॥ अ० ७।१।२६ ॥

तैदिक प्रयोगों में जो नपुंसकलिङ्ग में वर्त्तमान इतर शब्द से परे सु और अम् विभक्ति हों, तो उसको [ उनको ] अद्भु आदेश न हो।

जैसे—इतरम् २ ॥

५७६-वा०-एकतरात् सर्वत्र ॥ १७२ ॥

अ० ७।१।२६ ॥

सर्वत्र अर्थात् वेद और लोक में जो नपुंसकलिङ्गस्थ एकतर शब्द से परे सु और अम् विभक्ति हों, तो उनको अद्भु न हो।

जैसे—एकतरन्तिष्ठति । एकतरं पश्य ॥

त्व शब्द अन्य का पर्यायवाची है, इसमें कुछ विशेष नहीं ॥

नेम शब्द में विशेष यह है कि—

५७७-प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च ।

॥ १७३ ॥ अ० १।१। ३२ ॥

जो जस् विभक्ति के परे प्रथम, चरम, तयप्प्रत्ययान्त, अल्प, अर्द्ध, कतिपय, नेम, ये शब्द हों, तो इनकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो ।

नेम शब्द का सर्वादिगण में पाठ होने से प्राप्तविभाषा है । प्रथमादिकों की सर्वनाम संज्ञा में अपूर्वविधान विकल्प है इसलिये जिस पक्ष में सर्वनामसंज्ञा होती है, वहां सर्व शब्द के समान जस् विभक्ति के स्थान में शी आदेश हो जाता । और जहां सर्वनामसंज्ञा नहीं होती, वहां पुरुष शब्द के तुल्य प्रयोग जस् विभक्ति में भी होते हैं । जैसे—

प्रथमे; प्रथमाः । चरमे; चरमाः । तयप्प्रत्ययान्त—द्वितये; द्वितर्याः । त्रितये; त्रितयाः । अल्पे; अल्पाः । अर्द्धे; अर्द्धाः । कतिपये; कतिपयाः । नेमे; नेमाः । आगे प्रथमादि शब्दों के प्रयोग 'पुरुष' शब्द के समान और नेम शब्द के 'सर्व' शब्द के समान समझने चाहिये ॥

सम् और सिम् शब्दों के कुछ विशेष प्रयोग नहीं, किन्तु सर्व शब्द के समान ही हैं ॥

५७८-पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापरअधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ १७४ ॥ अ० १।१। ३३ ॥

जस् विभक्ति के परे संज्ञाभिन्न व्यवस्था में पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, ये शब्द हों, तो इनकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो, और अन्यत्र तो नित्य ही हो जावे ।



जैसे—पूर्वेषाम् । प्रथमादि शब्दों के समान इनके भी रूप होते हैं । जैसे—पूर्वे; पूर्वाः । परे; पराः । अवरे; अवराः । दक्षिणे; दक्षिणाः । उत्तरे; उत्तराः । अपरे; अपराः । अभरे; अधराः । और जहां संज्ञा और व्यवस्था अर्थ होगा, वहां तो पूर्वार्थिकों की सर्वनामसंज्ञा ही न होगी और 'पुरुष' शब्द के समान प्रयोग होंगे ॥

५७९—स्वमुज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ १७५ ॥

अ० १।१। ३४ ॥

जस् विभक्ति परे हो, तो ज्ञाति अर्थात् बन्धु और धन के पर्यायवाची स्व शब्द को छोड़ के अन्य अर्थों में इसकी सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो ।

स्वे पुत्राः; स्वाः पुत्राः । स्वे पितरः; स्वाः पितरः । इसके अन्य सब प्रयोग 'सर्व' शब्द के समान जानो । और जहां जाति और धन के वाची स्व शब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं होती, वहां 'पुरुष' शब्द के समान प्रयोग हो जाते हैं ॥

५८०—अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ १७६ ॥

अ० १।१। ३५ ॥

बहिर्योग जो कुछ अलग हो और उपसंव्यान जो मिला हो । बहिर्योग और उपसंव्यान अर्थ में जस् विभक्ति परे हो, तो अन्तर शब्द की सर्वनामसंज्ञा विकल्प करके हो ।

अन्तरे; अन्तरा वा गृहाः अन्तरे; अन्तरा वा शाटकाः ॥

सर्वनामवाची पूर्वादि नव शब्दों में जो विशेष है सो लिखते हैं—

५८१-पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ॥ १७७ ॥

अ० ७ । १ । १६ ॥

पूर्वादि नव शब्दों से परे जो डसि और डि विभक्ति हों, तो उनके स्थान में स्मात् और सिन् आदेश विकल्प करके हों।

जिस पक्ष में उक्त आदेश नहीं होते वहां 'पुरुष' शब्द के समान रूप हो जाते हैं। जैसे—पूर्वस्मात्; पूर्वात्। पूर्वसिन्; पूर्वे। परस्मात्; परात्। परसिन्; परे। अवरस्मात्; अवरात्। अवरसिन्; अवरे। दक्षिणस्मात्; दक्षिणात्। दक्षिणसिन्; दक्षिणे। उत्तरस्मात्; उत्तरात्। उत्तरसिन्; उत्तरे। अपरस्मात्; अपरात्। अपरसिन्; अपरे। अधरस्मात्; अधरात्। अधरसिन्; अधरे। स्वस्मात्; स्वात्। स्वसिन्; स्वे। अन्तरस्मात्; अन्तरात्। अन्तरसिन्; अन्तरे ॥

अथ इसके आगे सर्वाद्यन्तर्गत त्यदादि शब्दों के भी प्रयोग तीनों लिङ्गों में दिखलाते हैं।

पुंलिङ्ग त्यद् शब्द—

'त्यद्+सु'—

५८२-त्यदादीनामिः ॥ १७८ ॥ अ० ७ । २ । १०२ ॥

जो सु अदि विभक्ति परे हों, तो त्यदादि शब्दों के अन्त को अकारादेश हो।

यहां दकार को अकार और दोनों अकारों को एकादेश होकर—'त्य+सु' एक अवस्था में—

५८३-तदोः सः सावनन्त्ययोः ॥ १७९ ॥

अ० ७ । २ । १०६ ॥



सु विभक्ति परे हो, तो त्यदादि शब्दों के आदि वा मध्य में जो तकार दकार है, उनको सकारादेश हो ।

जैसे—स्यः—

त्यौ । त्ये । त्यम् । त्यौ । त्यान् । त्येन । त्याभ्याम् । त्यैः ।  
त्यस्मै । त्याभ्याम् । त्येभ्यः । त्यस्मात् । त्याभ्याम् । त्येभ्यः ।  
त्यस्य । त्ययोः । त्येषाम् । त्यस्मिन् । त्ययोः । त्येषु ॥

नपुंसकलिङ्गं त्यद् शब्द—

‘त्यद्+सु’ यहाँ सु और अम् ‘का लुक्’ होने से अन्त्य तकार को सकारादेश नहीं होता—त्यत्; त्यद् । त्ये । त्यानि ।  
फिर भी—त्यत्; त्यद् । त्ये । त्यानि । आगे ‘सर्व’ शब्द के समान जानो ॥

स्त्रीलिङ्गं त्यद् शब्द—

‘त्यद्+सु’ यहाँ विभक्ति विषय मानकर अकारादेश<sup>१</sup> होके अकारान्त से टाप्<sup>२</sup> होजाता है—‘त्या+सु’ पीछे आदि तकार को सकार होकर—स्या । त्ये । त्याः । त्याम् । त्ये । त्याः ।  
त्यया । त्याभ्याम् । त्याभिः । त्यस्यै<sup>३</sup> । त्याभ्याम् । त्याभ्यः ।  
त्यस्याः । त्याभ्याम् । त्याभ्यः । त्यस्याः । त्ययोः । त्यासाम् ।  
त्यस्याम् । त्ययोः । त्यासु ॥

१. सु शम् का लुक् (स्वमोर्नपुंसकात् ॥ ७ । १ । २३) नामिक—७२ ॥

२. अकारादेश—(त्यदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२) नामिक—१७८ ॥

३. अकारान्त से टाप्—(अजायतष्टाप् ॥ ४ । १ । ४) [छे० ता० २] ॥

४. स्याट् का आगम—(सर्वनाम्नः स्याट्ढस्वश्च ॥ ७ । ३ । ११४)

नामिक—१६३ ॥

## पुंलिङ्ग तद् शब्द—

सः । तौ । ते । तम् । तौ । तान् । तेन् । ताभ्याम् । तैः ।  
 तस्मै । ताभ्याम् । तेभ्यः । तस्मात् । ताभ्याम् । तेभ्यः । तस्य ।  
 तयोः । तेषाम् । तस्मिन् । तयोः । तेषु ॥

## नपुंसकलिङ्ग तद् शब्द—

तत् । तद् । ते । तानि । फिर भी—तत् । तद् । ते । तानि ।  
 आगे पुंलिङ्ग के समान ॥

## स्त्रीलिङ्ग तद् शब्द—

सा । ते । ताः । ताम् । ते । ताः । तया । ताभ्याम् । ताभिः ।  
 तस्यै । ताभ्याम् । ताभ्यः । तस्याः । ताभ्याम् । ताभ्यः । तस्याः ।  
 तयोः । तासाम् । तस्याम् । तयोः । तासु ॥

यहां तीनों लिङ्गों में 'त्यद्' शब्द के समान सूत्र लगते हैं ।  
 तथा 'यद्' शब्द में भी कुछ विशेष नहीं ॥

## पुंलिङ्ग यद् शब्द—

यः । यौ । ये । यम् । यौ । यान् । येन् । याभ्याम् । यैः ।  
 यस्मै । याभ्याम् । येभ्यः । यस्मात् । याभ्याम् । येभ्यः । यस्य ।  
 ययोः । येषाम् । यस्मिन् । ययोः । येषु ॥

## नपुंसकलिङ्ग यद् शब्द—

यत् । यद् । ये । यानि । फिर भी—यत् । यद् । ये । यानि ।  
 अन्य प्रयोग पुंलिङ्ग के समान जानने चाहिये ॥

## स्त्रीलिङ्ग यद् शब्द—



या। ये। याः। याम्। ये। याः। यया। याभ्याम्। याभिः।  
 यस्यै। याभ्याम्। याभ्यः। यस्याः। याभ्याम्। याभ्यः। यस्याः।  
 ययोः। यासाम्। यस्याम्। ययोः। यासुः॥

पुँल्लिङ्ग एतद् शब्द—

‘एतद्+सु’ यहां ‘एतद्’ शब्द के मध्य तकार को सकारादेश’  
 होकर भूर्द्धन्य षकारादेश होजाता है—एषः। एतौ। एते॥

५८४—द्वितीयाटोस्वेनः॥ १८०॥ अ० २। ४। ३४॥

अन्वादेश विषय में द्वितीया, टा और अस् विभक्ति परे हों,  
 तो इदम् और एतत् शब्द को ‘एन’ आदेश हो।

‘अन्वादेश’ उसको कहते हैं कि जहां एक वाक्य में किसी  
 शब्द को कहकर विषयान्तर प्रकाशित करने के लिये उसी  
 शब्द को दूसरे वाक्य में कहें। जैसे—एतं बाजं शिखामपीपठः;  
 अथो एनं वेदमध्यापय। एनौ। एनान्। एतेन बालेन राज्ञिरधीता;  
 अथो एतेनाहरप्यधीतम्। एतयोर्बालयोः शोभनं शीलम्;  
 अथो एनयोः कुशाग्रा मेधा। यहां तीनों जगह उत्तर उत्तर  
 वाक्य में एनादेश हुआ है।

परन्तु केवल ‘एतद्’ शब्द के प्रयोगों में कुछ विशेष न  
 होगा—

एतम्। एतौ। एतान्। एतेन। एताभ्याम्। एतैः। एतस्मै।  
 एताभ्याम्। एतेभ्यः। एतस्मात्। एताभ्याम्। एतेभ्यः। एतस्य।  
 एतयोः। एतेषाम्। एतस्मिन्। एतयोः। एतेषु॥

१. तकार को सकार—(तदोः सः सावनन्त्ययोः॥ ७। २। १०६)

नामिक—१७१॥

नपुंसकलिङ्ग एतद् शब्द—

एतत् । एतद् । एते । एतानि । फिर भी—एतत् ; एतद् ।  
एते । एतानि । अन्य प्रयोग पूर्व के समान जानना ।

स्त्रीलिङ्ग एतद् शब्द—

एषा । एते । एताः । एताम् । एते । एताः । एतया ।  
एताभ्याम् । एताभिः । एतस्यै । एताभ्याम् । एताभ्यः । एतस्याः ।  
एताभ्याम् । एताभ्यः । एतस्याः । एतयोः । एतासाम् । एतस्याम् ।  
एतयोः । एतासु ॥

पुंलिङ्ग इदम् शब्द—

‘इदम्+सु’—

५८५—इदमो मः ॥ १८१ ॥ अ० ७ । २ । १०६ ॥

सु विभक्ति परे हो, तो इदम् शब्द के मकार को मकार ही आदेश हो, अर्थात् त्यदादिकों को जो अकारादेश कहा है, सो न हो ।

५८६—इदोऽय् पुंसि ॥ १८२ ॥ अ० ७ । २ । १११ ॥

पुंलिङ्ग विषय में इदम् शब्द के इद् भाग को अय् आदेश हो ।

‘अय्+अम्+स्’ हल्ङ्थादिलोप होकर—अयम् ॥

‘इदम्+औ’ यहां अकारादेश होकर—‘इद+औ’—

५८७—इदश्च ॥ १८३ ॥ अ० ७ । २ । १०६ ॥

१. अकारादेश—(त्यदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२) नामिक—१७८ ॥



विभक्ति के परे इदम् शब्द के दकार को मकारादेश हो ।

‘इम+औ’ यहां पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होकर—  
‘इमौ’ । ‘इम+जस्’ ‘सर्व’ शब्द के समान—इमे । इमम् । इमौ ।  
इमान् ॥

‘इदम्+टा’ यहां भी मकार को अकारादेश और एकादेश  
होकर—

५८८—अनाप्यक्षः ॥ १८४ ॥ अ० ७ । २ । ११२ ॥

आप् अर्थात् टौ और ओस् विभक्ति परे हो, तो ककारभिन्न  
इदम् शब्द के इद् भाग को अन आदेश हो ॥

टा के स्थान में इन होकर—अनेन ।

‘ककारभिन्न’ कहने का प्रयोजन यह है कि—‘इमकेन’  
यहां अन आदेश न हो । अगले सूत्र में हल् ग्रहण के होने से  
इस सूत्र करके अन आदेश अजादि विभक्तियों में होता है,  
सो तृतीयादि अजादि विभक्तियों में भी टा और ओस् के परे  
ही जानना चाहिये, अन्यत्र नहीं ॥

‘इद+भ्याम्’—

५८९—हलि लोपः ॥ १८५ ॥ अ० ७ । २ । ११३ ॥

तृतीयादि हलादि विभक्ति परे हों, तो इदम् शब्द के इद्  
भाग का लोप हो ।

‘अ+भ्याम्’ अदन्त अङ्ग को दीर्घ होकर—आभ्याम् ॥

१. एकादेश—(अतो गुणं ॥ ६ । १ । ६७) ॥

२. अदन्त अङ्ग को दीर्घ—(सुपि च ॥ ७ । ३ । १०२)

नामिक—२८ ॥

‘अ+भिस्’ यहां भी अदन्त शब्दों के समान भिस् विभक्ति को ऐस् आदेश प्राप्त है. इसलिये—

५६०—नेदमदसौरकोः ॥ १८६ ॥ अ० ७।१।११ ॥

जो ककारभिन्न इदम् और अदस् शब्द से परे भिस् विभक्ति हो, तो उसको एस् आदेश न हो।

फिर एकारादेश’ होकर—एभिः। ‘ककारभिन्न’ इसलिये कहा है कि—इमकैः। अमुकैः ॥

अस्मै। आभ्याम्। एभ्यः। अस्मात्। आभ्याम्। एभ्यः। अस्य। ‘इदम्+ओस्’ यहां भी पूर्वसूत्र से ‘अन’ आदेश होकर—अनयोः। एषाम्। अस्मिन् अनयोः। एषु ॥

जब इदम् शब्द अन्वादेश में आता है, तब कुछ प्रयोग विशेष होते हैं—

५९१—इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ ॥ १८७ ॥

अ० २।१।३२ ॥

अन्वादेश विषय में तृतीयादि विभक्ति परे हों, तो इदम् शब्द के स्थान में अनुदात्त अश् आदेश हो।

अन्वादेश के भी रूप जैसे पूर्व लिख चुके वैसे ही होंगे, परन्तु स्वर में भेद होगा। जहां तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इदभाग का लोप होगा, वहां—आभ्याम्। अस्मै, ऐसा स्वर

१. एकारादेश—(बहुवचने मल्येत् ॥ ७।३।१०३)  
नामिक—३२ ॥



होगा । और जहां अन्वादेश में अश् आदेश होगा, वहां—  
आभ्याम् । अस्मै, ऐसा होगा ॥

( द्वितीयोटौस्वेनः ॥ २ । ४ । ३४ ) इस उक्त ( ना०-१८० ) सूत्र से द्वितीया, टा, ओस् इन तीन विभक्तियों में जैसे 'एतत्' शब्द को उत्तर वाक्य में 'एन' आदेश और पूर्व वाक्य में एतत् शब्द का प्रयोग आता है, वैसे यहां भी पूर्व वाक्य में 'इदम्' शब्द का प्रयोग और उत्तर वाक्य में 'अश्' आदेश का प्रयोग किया जाता है ॥

नपुंसकलिङ्ग इदम् शब्द—

इसमें इतना विशेष है कि इदम् के मकार को अ और सु विभक्ति को अम् होके—इदम् । इमे । इमानि । फिर, भी—इदम् । इमे । इमानि । आगे पुंलिङ्ग के सदृश प्रयोग होंगे ॥

स्त्रीलिङ्ग इदम् शब्द—

'इदम्+सु' यहां अकारादेश का निषेध होकर—

पृ ६२-यः सौ ॥ १८८ ॥ अ० ७ । २ । ११० ॥

सु विभक्ति परे हो; तो इदम् शब्द के दकार को यकारादेश होवे ।

इयम् । आगे इसको अदन्त के होने से टाप् होकर 'कन्या' शब्द के समान जानो । जैसे—इमे । इमाः । इमाम् । इमे । इमाः । 'इद+टा' अन् आदेश होके—अनया । यहां भी 'भ्याम्' आदि

१. इद को अन्—(अनाप्यकः ॥ ७ । २ । ११२) नामिक—१८४ ॥

तृतीयादि हलादि विभक्तियों में इद् भाग का लोप<sup>१</sup> होजाता है—आभ्याम् । आभिः । अस्यै । आभ्याम् । आभ्यः । अस्याः । आभ्याम् । आभ्यः । अस्याः । अनयोः । आसाम् । अस्याम् । अनयोः । आसु ॥

पुँल्लिङ्ग अदस् शब्द—

‘अदस्+सु’—

५९३—अदस् औ सुलोपश्च ॥ १८९ ॥

अ० ७ । २ । १०७ ॥

जो सु विभक्ति परे हो, तो अदस् शब्द के सकार को औ आदेश और सु विभक्ति का लोप हो जावे ।

‘अद+औ’ यहाँ दकार को सकारादेश<sup>२</sup> होकर—असौ॥

‘अदस्+औ’ यहाँ से आगे औ आदि विभक्तियों में अकारादेश<sup>३</sup> होकर ‘अद’ सर्वत्र रह जाता है । ‘अद+औ’—

५९४—अदसोऽसेर्दादु दो मः ॥ १९० ॥

अ० ८ । २ । १८० ॥

सकार भिन्न अदस् शब्द के दकार से परे अवर्ण को उर्वर्ण आदेश और उसके दकार को मकारादेश हो जावे ।

१. इद् भाग का लोप— ( हलि लोपः ॥ ७ । २ । ११३ )  
नामिक—१८५ ॥

२. दकार को स्— ( तदोः सः सावर्णन्ययोः ॥ ७ । २ । १०६ )  
नामिक—१७६ ॥

३. अकारादेश—(त्यदादीनामः ॥ ७ । २ । १०२) नामिक—१७८ ॥



‘अमु+औ’ यहां पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश होके—अमू ॥

‘अद+जस्’ यहां ‘सर्व’ शब्द के समान अदन्त सर्वनाम से परे जस् को शी और पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होकर—  
‘अदे’ यहां—

५६५—एत ईद्वहुवचने ॥ १६१ ॥ अ० द। २। ८१ ॥

अदस् शब्द के दकार से परे जो एकार उसको ईकारादेश और दकार को मकारादेश हो, बहुवचन में।

अमी ॥

‘अमु+अम्’ = अमुम् । अमू । अमून । अमुना । अमूभ्याम् ।  
‘अदस्+मिस्’ यहां मिस् को ऐस् का निषेध, एकार को बहुवचन में ईकार और दकार को मकारादेश होकर—  
अमीभिः ॥

अमुष्मै । अमूभ्याम् । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमूभ्याम् ।  
अमीभ्यः । अमुष्य । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमुयोः ।  
अमीषु ॥

नपुंसकलिङ्ग अदस् शब्द—

‘अदस्+सु’ यहां सु और अम् का लुक् सकार को स्त्व

१. मिस् को ऐस् का निषेध—( नेमदसोरकोः ॥ ७।१।११ )

नामिक—१८६ ॥

२. सु और अम् का लुक्—( स्वमोनपुंसकात् ॥ ७।१।२३ )

नामिक—७२ ॥

३. स् को रु—( ससजुषो रुः ॥ ८।२।६६ ) नामिक—१६ ॥

और रु को विसर्जनीय होके—अदः । 'अमु+औ' = अमू ।  
अमूनि । फिर भी—अदः । अमू । अमूनि । आगे पुंलिङ्ग के  
समान जानो ॥

स्त्रीलिङ्ग अदस् शब्द—

'अदस्+सु' पूर्ववत्—असौ । 'अदा+औ' इस अवस्था में  
वृद्धि एकादेश, दकार से परे औकार को दीर्घ ऊकार और  
दकार को मकारादेश होकर—अमू । अमूः । अमूम् । अमू ।  
अमूः । 'अदा+टा' यहां आकार को एकार और उसको अय  
आदेश होकर—'अदया' इस अवस्था में दकार से परे अकार  
को उकार और दकार को मकारादेश होकर—अमुया ।  
अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्याम् । अमूभ्यः ।  
अमुष्याः । अमूभ्याम् । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः । अमूषाम् ।  
अमुष्याम् । अमुयोः । अमूषु ॥

'सर्वनाम पुंलिङ्ग एक शब्द—

एकः । एकौ । एके । एकम् । एकौ । एकान् । एकेन ।  
एकाभ्याम् । एकैः । एकस्मै । एकाभ्याम् । एकेभ्यः । एकस्मात् ।  
एकाभ्याम् । एकेभ्यः । एकस्य । एकयोः । एकेषाम् ।  
एकस्मिन् । एकयोः । एकेषु ॥

नपुंसकलिङ्ग में—एकम् । एके । एकानि । फिर भी—  
एकम् । एके । एकानि । आगे पुंलिङ्ग के समान ॥

स्त्रीलिङ्ग एक शब्द—

'सर्वा' शब्द के समान । जैसे—एका । एके । एकाः ।  
एकाम् । एके । एकाः । एकया । एकाभ्याम् । एकाभिः ।



एकस्यै । एकाभ्याम् । एकाभ्यः । एकस्याः । एकाभ्याम् ।  
 एकाभ्यः । एकस्याः । एकयोः । एकासाम् । एकस्याम् ।  
 एकयोः । एकासु ॥

पुंलिङ्ग संख्यावाची द्वि शब्द—

इस शब्द के नियत द्विवचनान्त ही प्रयोग किये जाते हैं ।  
 'द्वि+औ' त्यदादिकों में होने से अकारादेश होकर वृद्धि एकादेश  
 हो जाता है—द्वौ । द्वौ । 'द्वि+भ्याम्' अकारादेश और दीर्घ  
 होकर—द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्यम् । द्वयोः । द्वयोः ॥

नपुंसक और स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा और द्वितीया विभक्ति  
 के द्विवचन में—द्वे । द्वे । ऐसे प्रयोग होंगे । आगे पुंलिङ्ग के  
 तुल्य जानो ॥

सर्वनामवाची युष्मद् और अस्मद् शब्द—

इन दोनों शब्दों के तीनों लिङ्गों और सातों विभक्तियों में एक  
 प्रकार के प्रयोग होते हैं । इसलिये इनके प्रयोग साथ २ ही  
 लिखते हैं—

'युष्मद्+सु । अस्मद्+सु'—

५९६-मपर्यन्तस्य ॥ १९२ ॥ अ० ७।२।११ ॥

यह अधिकार सूत्र है । यहां से आगे युष्मद् और अस्मद्  
 शब्द को जो आदेश कहें, वे मपर्यन्त को हों ।

५९७-त्वाहौ सौ ॥ १९३ ॥ अ० ७।२।१४ ॥

जो सु विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त  
 के स्थान में क्रम से त्व और अह आदेश हों ।

युष्मद्, अस्मद् को आदेश होकर—'त्व+अद्+सु । अह+अद्+सु' ।

५६८—शेषे लोपः ॥ १६४ ॥ अ० ७ । २ । ६० ॥

शेष, अर्थात् आदेश होकर जो अद् भाग बचा है, उसका लोप हो ।

जैसे 'त्व+सु । अह+सु' ।

५६९—डे प्रथमयोहम् ॥ १६५ ॥ अ० ७ । १ । २८ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे डे और प्रथमा, द्वितीया विभक्ति हों, तो इनके स्थान में अम् आदेश हो ।

जैसे—'त्व+अम् । अह+अम्' । पूर्वरूप एकादेश होकर—त्वम् । अहम् ॥

'युष्मद्+औ । अस्मद्+औ'—

६००—युवावौ द्विवचने ॥ १६६ ॥ अ० ७ । २ । ६२ ॥

द्विवचन विभक्तियों के परे युष्मद् अस्मद् शब्दों के मध्यन्त के स्थान में क्रम से युव, आव आदेश हों ।

'युव+अद्+औ । आव+अद्+औ' । अद् भाग का लोप होके—'युव+औ । आव+औ' ।

६०१—प्रथमास्य द्विवचने भाषायाम् ॥ १६७ ॥

अ० ७ । २ । ८८ ॥

जो भाषा अर्थात् लौकिक प्रयोगविषय में प्रथमा विभक्ति का द्विवचन परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द को आकारादेश हो ।



जैसे—युवाम् । आवाम् । ‘भाषा’ के कहने से वेद में आकारादेश नहीं होता—युवम् \* । आतम्, ऐसे ही प्रयोग होते हैं ॥

‘युष्मद्+जस् । अस्मद्+जस्’—

६०२—यूयवयौ जसि ॥ १६८ ॥ अ० ७ । ८ । ६३ ॥

जो जस् विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्दों के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से यूय, वय आदेश हों ।

शेष अद् भाग का लोप और जस् को अम् आदेश होकर—  
यूयम् । वयम् ॥

‘युष्मद्+अम् । अस्मद्+अम्’—

६०३—त्वमावेकवचने ॥ १६९ ॥ अ० ७ । २ । ६७ ॥

एकवचन विभक्तियों में युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त के स्थान में क्रम से त्व, म आदेश हों ।

‘त्व+अद्+अम् । म+अद्+अम्’—

६०४—द्वितीयायां च ॥ २०० ॥ अ० ७ । २ । ८७ ॥

द्वितीया, विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् शब्दों को आकारादेश हो ।

अन्त्य दकार को अकार और दोनों को संवर्णदीर्घ एकादेश होकर—त्वाम् । माम् ॥

\* [ युष् वस्त्राणि पीवसा वसाथे (अ० १ । १५२ । १) ॥ सं० ॥ ]

१ जस् को अम् आदेश—(हे प्रथमयोरम् ॥ ७ । १ । २८) ।

नामिक—१६५ ॥

‘युष्मद्+औ । अस्मद्+औ’ यहां मपर्यन्त को युव आव, दकार को आकार, औ के स्थान में अम् और पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेश होकर—युवाम् । आनाम् ॥

‘युष्मद्+शस् । अस्मद्+शस्’ यहां भी दकार को आकार और सवर्णदीर्घ एकादेश होके—*द्वितीयां च*

६०५—शसो न ॥ २०१ ॥ अ० ७ । १ । २६ ॥

युष्मद् अस्मद् शब्द से परे जो शस्, उस सकार को नकारादेश हो ।

जैसे—युष्मान् । अस्मान् ॥

युष्मद्+टा । अस्मद्+टा’ यहां एकवचन में युष्मद् अस्मद् के मपर्यन्त को त्व, म आदेश होके—‘त्व+अद्+टा । म+अद्+टा’ ।

६०६—योऽर्चि ॥ २०२ ॥ अ० ७ । २ । ८६ ॥

अनादेश अर्थात् जिसको कोई आदेश न हुआ हो, वह अजादि विभक्ति परे हो, तो युष्मद्, अस्मद् शब्द को यकारादेश हो ।

अन्त्य दकार को य् और अकार को पूर्वसवर्ण एकादेश होकर—त्वया । मया ॥

द्विवचन में—‘युव+अद्+भ्याम् । आत+अद्+भ्याम्’ यहां—  
६०७—युष्मदस्मदोरनादेशो ॥ २०३ ॥ अ० ७ । २ । ८६ ॥

१. [ यहां ( आदेः परस्य ॥ १ । १ । २३ ) इससे शस् के अकार के स्थान पर नकारादेश होकर ( संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८ । २ । २३ ) से सकार का लोप होता है ॥ ]



जिसको कोई आदेश न हुआ हो वह हलादि विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द को आकारादेश हो।

दकार को आकार और दीर्घ एकदेश होके—युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ॥

युष्मद्+ङे । अस्मद्+ङे—

६०८—तुभ्यमहौ डयि ॥ २०४ ॥ अ० ७ । २ । ६५ ॥

ङे विभक्ति परे हो, तो युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को तुभ्य और मह्य आदेश क्रम से हों ।

विभक्ति को अम् आदेश और अद्भाग का लोप होके—  
तुभ्यम् । मह्यम् ॥

युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । 'युष्मद्+भ्यस् । अस्मद्+भ्यस्'—

६०९—भ्यसोऽभ्यम् ॥ २०५ ॥ अ० ७ । १ । ३० ॥

युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे भ्यस् विभक्ति को अभ्यम् आदेश ही ।

अद्भाग का लोप होकर—युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ॥

'युष्मद्+ङसि । अस्मद्+ङसि' यहां एकवचन में मपर्यन्त को त्व, म आदेश और अद्भाग का लोप होकर—

६१०—एकवचनस्य च ॥ २०६ ॥ अ० ७ । १ । ३२ ॥

जो युष्मद् अस्मद् से परे पञ्चमी विभक्ति का एकवचन हो, तो उसको अत् आदेश हो ।

१. विभक्ति को अम्—( ङे प्रथमयोरम् ॥ ७ । १ । २८ )

नामिक—१६५ ॥

‘त्व+अत् । म+अत्’ । पररूप गुण’ एकादेश होकर—  
त्वत् । मत् ॥ •

युष्मद्भ्याम् । आवाभ्याम् । ‘युष्मद्+भ्यस् । अस्मद्+भ्यस्’  
यहां अद्भाग का लोप होके—

६११—पञ्चम्या अत् ॥ २०७ ॥ अ० ७ । १ । ३१ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्द से परे पञ्चमी विभक्ति का भ्यस् हो,  
तो उसको अत् आदेश हो ।

पररूप एकादेश होके—युष्मत् । अस्मत् ॥

‘युष्मद्+ङस्+अस्मद्+ङस्’—

६१२—तवममौ ङसि ॥ २०८ ॥ अ० ७ । २ । ६६ ॥

ङस् विभक्ति के परे युष्मद् अस्मद् शब्द के मपर्यन्त को  
तत् और मम आदेश हों ।

यहां भी अद्भाग का लोप होकर—‘तव+ङस् ।  
मम+ङस्’ ।

६१३—युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ॥ २०९ ॥

अ० ७ । १ । २७ ॥

जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे ङस् विभक्ति हो, तो उसको  
अश् आदेश होवे ।

अर्श आदेश में ‘शकार’ इसलिये है कि ङस्मात्र के स्थान  
में अकार होजावे । पररूप एकादेश होके—तव । मम ॥

१. पररूपगुण—(अतो गुणे ॥ ६ । १ । ६५ ) ॥



‘युष्मद्+ओस् । अस्मद्+ओस्’ यहां भी द्विवचन में मपर्यन्त को युव आव, और दकार को यकारादेश होकर—युवयोः । आवयोः ॥

‘युष्मद्+आम् । अस्मद्+आम्’ यहां सर्वनामसंज्ञा के होने से सुट् और अद्भाग का लोप होकर—

६१४—साम आकम् ॥ २१० ॥ अ० ७ । १ । ३३ ॥

‘जो युष्मद् अस्मद् शब्दों से परे सुट्सहित षष्ठी का बहुवचन आम् विभक्ति हो, तो उसको ‘आकम्’ आदेश हो ।

फिर एकादेश होकर—युष्माकम् । अस्माकम् ॥

‘युष्मद्+ङि । अस्मद्+ङि’ यहां भी एकवचन में मपर्यन्त को त्व, म और दकार को यकारादेश होके—त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । ‘युष्मद्+सु । अस्मद्+सु’ यहां दकार को आकार<sup>३</sup> आदेश होके—युष्मासु । अस्मासु ॥

अब इन दो शब्दों में विशेष इतना है कि—

६१५—युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयो-

र्वात्तावौ ॥ २११ ॥ अ० ८ । १ । २० ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के साथ वर्तमान, पद से परे जो युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से “वाम्”

१. द् को य्—( योऽचि ॥ ७ । २ । ८६ ) नामिक—२०२ ॥

२. सुट्—(अमि सर्वनाम्नः सुट् ॥ ७ । १ । ५२) नामिक—१६८ ।

३. द् को आ—( युष्मदस्मदोरनादेशे ॥ ७ । २ । ८६ )

नामिक—२०३ ॥

और “नौ” आदेश हों, और वे आगे कहे नियमानुसार अनुदात्त भी होजावें ।

यहां “वाम्” और “नौ” द्विवचन युष्मद् अस्मिद् के स्थान में समझे जाते हैं । जैसे—षष्ठी द्विवचन—‘युष्मद्+ओस् । अस्मद्+ओस्’ = ग्रामो वां स्वम्, जनपदो नौ स्वम् । यहां—युवयोः, आवयोः ऐसा प्राप्त था । चतुर्थीस्थ—ग्रामो वां दीयते, जनपदो नौ दीयते । यहां—युवाभ्याम्, आवाभ्याम् प्राप्त हैं । द्वितीयास्थ—माणवको वां पश्यति, माणवको नौ पश्यति । यहां—युवाम्, आवाम् प्राप्त हैं ।

इस सूत्र में ‘स्थ’ ग्रहण इसलिये है कि—दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः, यहां समास में षष्ठी का लुक् होने से आदेश और अनुदात्त भी नहीं हुआ ॥

६१६—बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ २१२ ॥

अ० ८ । १ । २१ ॥

जो षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के साथ वर्त्तमान, पद से परे बहुवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से “वस्” और “नस्” आदेश हों ।

जैसे—षष्ठीस्थ—विद्या वो धनम्, राज्यं नो धनम् । यहां—युष्माकम्, अस्माकम् ऐसा प्राप्त था । चतुर्थीस्थ—नमो वः पितरः, शन्नो भवतु । यहां—युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम् पाता है । द्वितीयास्थ—वाली वः पश्यति, मा नो वधीः । यहां—युष्मान्, अस्मान् प्राप्त था ॥

६१७—तेमयावेकवचनस्य ॥ २१३ ॥

अ० ८ । १ । २२ ॥



जो षष्ठी और चतुर्थी विभक्ति के साथ वर्तमान, पद से परे अपादादि में एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से ते, मे आदेश हों।

जैसे—[ षष्ठीस्थ—विद्या ते धनम्, राज्यं मे धनम् । यहां तव और मम पाता है । चतुर्थीस्थ—] नि मे धेहि, नि ते दधे । यहां—तुभ्यम्, मय्यम् ऐसा प्राप्त है, इत्यादि ॥

६१८—त्वामौ द्वितीयायाः ॥ २१४ ॥

अ० ८ । १ । २३ ॥

जो पद से परे एकवचन द्वितीयान्त युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में क्रम से “त्वा” “मा” ये अनुदात्त आदेश हों।

जैसे—कस्त्वा युनक्ति । पुनन्तु मा देवजनाः, इत्यादि । यहां—त्वाम्, माम् प्राप्त हैं ॥

६१९—न चवाहाहैवयुक्ते ॥ २१५ ॥

अ० ८ । १ । २४ ॥

जो युष्मद् अस्मद् को च, वा, ह, अह, एव इनका योग हो, तो उनके स्थान में वाम्, नौ आदि आदेश न हों।

जैसे—ग्रामो युवयोश्च स्वम् । ग्राम आवयोश्च स्वम्, इत्यादि ॥

६२०—पश्यायैश्चानालोचने ॥ २१६ ॥

अ० ८ । १ । २५ ॥

जो पश्याय धातुओं के अनालोचन अर्थ में वर्तमान युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वां नौ आदि आदेश न हों।

जैसे—ग्रामस्त्वां संप्रेक्ष्य संदृश्य समीक्ष्य [ वा ] गतः । ग्रामस्तव संप्रेक्ष्य गतः । ग्रामो मम संप्रेक्ष्य गतः, इत्यादि ॥

६२१-सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ॥ २१७ ॥

अ० ८ । १ । २६ ॥

प्रथमान्त पद जिससे पूर्व हो ऐसे युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वां नौ आदि आदेश विकल्प करके हों ।

जैसे—अथो ग्रामे कम्बलो मे खम् । अथो ग्रामे कम्बलो मम खम् । अथो जनपदे कम्बलस्ते खम् । अथो जनपदे कम्बलस्तव खम्, इत्यादि ॥

६२२-वा०-युष्मदस्मदोरन्यतरस्यामनन्वादेशो

॥ २१८ ॥ अ० ८ । १ । २६ ॥

जहाँ अनन्वादेश अर्थात् किसी वाक्य के पीछे उसी का निर्देश करना न हो, ऐसे अर्थ में वर्तमान जो युष्मद् अस्मद् पद हों, तो उनके स्थान में वाम्, नौ आदेश विकल्प करके हों ।

जैसे—ग्रामे कम्बलो वां खम् । ग्रामे कम्बलो युवयोः खम् । ग्रामे कम्बलो नौ खम् । ग्रामे कम्बल आवयोः खम् ॥

६२३-वा०-अपर आह—सर्व एव वान्नावादयोऽनन्वादेशो विभाषा वक्तव्याः ॥ २१९ ॥ अ० ८ । १ । २६ ॥

इस विषय में किन्हीं लोगों का ऐसा मत है कि अनन्वादेश में सब वां, नौ आदि आदेश विकल्प करके हों ।

जैसे—कम्बलस्ते खम् । कम्बलस्तव खम् । कम्बलो मे खम् । कम्बलो मम खम् ॥

भवत् शब्द सर्वादिगण में पढ़ा है, इसकी सर्वनाम संज्ञा



होने का प्रयोजन यह है कि—अकृच्छेषात्वानि । अकच्—  
भवकान् । शेष—स च भवांश्च भवन्तौ । आत्व—भवादृशः ॥

पुँल्लिङ्ग भवत् शब्द—

‘भवत्+सु’ यहां सर्वनामस्थानसंज्ञा होने से नुम्<sup>१</sup> ‘सु’ के परे दीर्घ<sup>२</sup>, हल् से परे सकार का लोप<sup>३</sup> और संयोगान्तलोप<sup>४</sup> होकर—भवान् । भवन्तौ । भवन्तः । भवन्तम् । भवन्तौ । भवतः । भवता । भवद्भ्याम् । भवद्भिः । भवते । भवद्भ्याम् । भवद्भ्यः । भवतः । भवतः । भवद्भ्याम् । भवद्भ्यः । भवतः । भवतोः । भवतौम् । भवति । भवतोः । भवत्सु । इसके सब कार्य्य तकारान्त ‘पठद्’ शब्द के समान और नपुंसकलिङ्ग में ‘उदशिवत्’ शब्द के समान समझो ॥

स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त होके—भवती । भवत्यौ । भवत्यः, इत्यादि स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त ‘कुमारी’ शब्द के समान जानो ॥

सर्वनाम पुँल्लिङ्ग किम् शब्द—

‘किम्+सु’—

१. नुम्—( उगिदच् सर्वनामस्थानेऽजातोः ॥ ७ । १ । ७० )  
नामिक—११३ ॥

२. सु के परे दीर्घ—( अत्वसन्तस्य चाधातोः ॥ ६ । ४ । १४ )  
नामिक—११२ ॥

३. हल् से परे सलोप—( हल्ङ्या० ॥ ६ । १ । ६४ ) नामिक—४० ॥

४. संयोगान्त लोप—( संयोगान्तस्य लोपः ॥ ८ । २ । २३ )  
नामिक—११४ ॥

६२४-किम् कः ॥ २२० ॥ अ० ७।२।१०३ ॥

सब विभक्तियों में किम् शब्द को क आदेश हो ।

अन्य कार्य 'सर्व' शब्द के समान—कः । कौ । कै । कर्म ।  
कौ । कान् । केन । काभ्याम् । कैः । कस्मै । काभ्याम् । केभ्यः ।  
कस्मात् । काभ्याम् । केभ्यः । कस्य । कयोः । केषाम् । कस्मिन् ।  
कयोः । केषु ॥

नपुंसकलिङ्ग में—किम् । के । कानि । फिर भी—किम् ।  
के । कानि । आगे पुँलिङ्ग के समान ॥

स्त्रीलिङ्ग में—का । के । काः । कर्म । के । काः । किया ।  
कभ्याम् । काभिः । कस्यै । काभ्याम् । काभ्यः । कस्याः ।  
काभ्याम् । काभ्यः । कस्याः । कयोः । कासाम् । कस्याम् ।  
कयोः । कासु ॥ ० ० —शब्दों का रूपविषय पूरा हुआ ॥

अब वे नियम लिखते हैं कि जो वेदों में पुरुष आदि  
सब शब्दमात्र में घटेंगे—

६२५-सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्याया-  
जालः ॥ २२१ ॥ अ० ७।१।३६ ॥

६२६-वी०-सुपां च सुपो भवन्तीति  
वक्तव्यम् ॥ २२२ ॥ अ० ७।१।२६ ॥

सूत्र और वार्तिक का अर्थ इकट्ठा ही किया जाता है ।  
वैदिक प्रयोग विषय में सुप् अर्थात् सु आदि इक्कीस प्रत्यय कि  
जिनको सात विभक्ति कहते हैं, उनके स्थान में सुप् अर्थात्



किसी के स्थान में कोई प्रत्यय का आदेश, लुक्, पूर्वसवर्ण, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल्; ये आदेश होजाते हैं ।

सुप्—ऋजवः सुपन्थाः, यहां बहुवचन जस् के स्थान में एकवचन सु आदेश हुआ है । पन्थानः, ऐसा प्राप्त था । युक्ता मातासीद्वरि दक्षिणायाः, यहां सप्तमी एकवचन के स्थान में षष्ठी का एकवचन होजाता है । दक्षिणायाम्, ऐसा पाता था ।

लुक्—परमे व्योमन्, यहां सप्तमी के एकवचन का लुक् होगया है । व्योम्नि, ऐसा प्राप्त है । सोमो गौरी अधिश्रितः, मामकी तनू इति, यहां सप्तमी के एकवचन का लुक् हुआ है । सोमो गौर्याम्, मामक्याम् तन्वाम्, ऐसा प्राप्त था ।

पूर्वसवर्ण—धीती, मती, यहां तृतीया के एकवचन को पूर्वसवर्ण आदेश हुआ है । धीत्या, मत्या, ऐसा प्राप्त था ।

आत्—उभा यन्तारं, यहां प्रथमा वा द्वितीया के द्विवचन के स्थान में । उभौ यन्तारौ, ऐसा पाता था ।

शे—युष्मे वाजबन्धवः, यहां बहुवचन जस् के स्थान में । यूयं वाजबन्धवः, ऐसा प्राप्त था ।

या—उरुया, यहां तृतीया के एकवचन टा के स्थान में । उरुया, ऐसा प्राप्त था ।

डा—नाभा पृथिव्याम्, यहां सप्तमी के एकवचन के स्थान में डा होगया है । नाभौ पृथिव्याम्, ऐसा प्राप्त था ।

ड्या—अनुष्ठया, यहां तृतीया के एकवचन के स्थान में ड्या होगया है । अनुष्ठुभा, ऐसा पाता था ।

याच्—साधुया, यहां प्रथमा के एकवचन को याच् हुआ है । साधु, ऐसा प्राप्त था ।

आल्—वसन्ता यजेत, यहां सप्तमी के एकवचन को आल् आदेश होगया है । वसन्ते, ऐसा होना था ॥

६२७-वा०-इयाडियांजीकाराणासुपसंख्यानम्

॥ २२३ ॥ अ० ७ । १ । ३६ ॥

सुपों के स्थान में इया, डियाच्, ईकार ये तीन आदेश हों ।

इया—दर्विया परिज्मम्, यहां तृतीया के एकवचन को इया होगया है । दारुणा, ऐसा पाता था ।

डियाच्—सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु; सुक्षेत्रिया; सुगात्रिया । यहां भी सुमित्राः, और सुक्षेत्रिणा, सुगात्रिणा, ऐसा प्राप्त था ।

ईकार—इति न शुष्कं सरसी शयानम्, यहां सप्तमी के एकवचन को ईकार होगया है । सरसि शयानम्, ऐसा होना था ॥

६२८-आड्याजयारां चोपसंख्यानम् ॥ २२४ ॥

अ० ७ । १ । ३६ ॥

आड्, अयाच्, अयार्, ये भी तीन सुपों के स्थान में आदेश हों ।

आड्—प्र बाहवा, यहां तृतीया के एकवचन को आड् आदेश हुआ है । प्र बाहुना, ऐसा प्राप्त था ।

अयाच्—स्वप्नया वाव सेचनम्, यहां भी तृतीया के स्थान में अयाच् हुआ है । स्वप्नेन, ऐसा प्राप्त था ।



अयार्—स नः सिन्धुमिव नावया, यहां भी तृतीया के एकवचन को अयार् हुआ है। नावा, ऐसा प्राप्त है ॥

अब लिङ्गानुशासनविषयक प्रत्ययों का संकेत करते हैं—

अष्टाध्यायी और उणादिस्य प्रत्ययों का परिगणन कि जिनके तीनों लिङ्गों में प्रयोग होते हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर, केलिम्, यत्, ध्यप्, रयत्, एवुल, तृच्, ल्यु, णिनि, अच्, क, श, कं, ष्वुन्, थकन्, एयुद्, वुन्, अण्, क, टक्, अच्, ट, इन्, खश्, खच्, अण्, ड, णिनि, टक्, ख्युन्, खिण्युच्, खुकञ्, किन् कञ्, किप्, णिव, ज्युद्, विद्, कप्, णिवन्, विच्, मनिन्, कनिप्, वनिप्, किप, णिनि, क्विप्, इनि, क्वनिप्, ड, ड्वनिप्, अतृन्, निष्ठा, कानच्, क्वसु, शत्, शानच्, शानन्, चानश्, शत्, तन्, इण्युच्, कस्तु, क्तु, घिनुण्, वुञ्, युच्, उकञ्, षाकन्, इनि, आलुच्, रु, क्मरच्, घुरच्, कुरच्, क्वरप्, ऊक, र, उ, कि, किन्, नजिङ्, आरु, क्तु, क्लुकन्, क्लुकन्, वरच्, क्विप्, ष्टन्, इत्र, क्त, एवुल, अण्, खल, युच्, इतने कृतप्रत्ययान्त शब्द और तद्धित सब तीनों लिङ्गों में आते हैं ॥

नियत पुंलिङ्ग प्रत्यय—घञ्, अच्, अप्, अच् [घञ्, अप्, घ, ञच्] प्रत्ययान्तों में भयादि शब्दों को छोड़कर, अथुच्, नङ्, नन्, कि, घ, ड, डर्, इक्, इकवक्, घञादि प्रत्ययान्त शब्द कर्त्ताभिन्न सवकारक और भाव में नियत पुंलिङ्ग ही आते हैं, परन्तु नङ्प्रत्ययान्तों में याञ्चा शब्द को छोड़ के, क्योंकि यह केवल स्त्रीलिङ्ग में ही आता है ॥

नियत नपुंसकलिङ्ग प्रत्यय—क्त, ल्युट् प्रत्यय कर्त्ताभिन्न कारक और भाव में ये सब नपुंसकलिङ्ग में ही आते हैं ॥

नियत स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय—क्तिन्, क्यप्, श, अ, अङ्, युच्, ईच्, एवुच्, अनि, ये कर्त्ताभिन्न कारक और भाव में आते हैं । तथा टाप्, डीप्, डाप्, डीष्, ऊङ्, डीन्, ति, इतने प्रत्ययान्त शब्द नियत स्त्रीलिङ्ग में आते हैं ॥

अब आगे उणादिप्रत्ययान्त शब्द और लिङ्गानुशासन तथा अर्द्धर्चादि की लिङ्गव्यवस्थादि लौकिक, वैदिक प्रयोगों की व्यवस्था से जान लेना ॥

इति श्रीमद्भयानन्दसरस्वतीस्वामिकृतव्याख्यासहितो  
नामिकः समाप्तः ॥

वसुकालाङ्गचन्द्रेऽब्दे चैत्रेमासि सिते दले ।  
वतुर्दश्यां बुधे वारे नामिकः पूरितो मया ॥ १ ॥





# अथ त्रामिकान्तर्गतानां शब्दानां सूचीपत्रम्

| शब्द      | पृष्ठ | शब्द               | पृष्ठ |
|-----------|-------|--------------------|-------|
| अ         |       | अप्                | ८३    |
| अक्षि     | ३३    | अप्सरस्            | ६४    |
| अग्नि     | २६    | अम्भस्             | ६५    |
| अग्रणी    | ३७    | अरुस्              | ६६    |
| अङ्गिरस्  | ६०    | अर्चिस्            | ६६    |
| अजा       | २६    | अर्थ               | १६०   |
| अतिरि     | ३३    | अर्द्ध             | ११०   |
| अथर्वन्   | ७२    | अर्यमन्            | ७३    |
| अदस्      | १२०   | अर्वाच्            | ६०    |
| अधर       | ११०   | अल्प               | ११०   |
| अनुहु     | १०१   | अल्पीयस्           | ६४    |
| अनुष्टुम् | ८५    | अवयाज् (अवयाः)     | ६६-६७ |
| अनेहस्    | ६१    | अवर                | ११०   |
| अन्तर     | १११   | अवी                | ४१    |
| अन्य      | १०८   | अश्मन्             | ७२    |
| अन्यतर    | १०८   | अश्रु              | ४५    |
| अपर       | ११०   | अश्ववत् (अश्ववान्) | ७०    |

| शब्द    | पृष्ठ | शब्द       | पृष्ठ |
|---------|-------|------------|-------|
| अष्टन्  | ७६    | उदशिवत्    | १०५   |
| असृज्   | १०४   | उन्मुह्    | १००   |
| अस्थि   | ३३    | उपानह्     | १००   |
| अस्मद्  | १२३   | उपेयिवस्   | ६४    |
| अहन्    | ७८    | उभ         | १०८   |
| आ       |       | उभय        | १०८   |
| आज्यपा  | २३    | उशनस्      | ६१    |
| आत्मन्  | ७२    | उशिज्      | ६५    |
| आपद्    | ७०    | उषस्       | ६४    |
| आयुस्   | ६६    | उष्णभोजिन् | ७६    |
| आशिष्   | ६७    | उष्णिज्    | ६५    |
| आसुरी   | ४०    | ऊ          |       |
| आस्य    | १०४   | ऊषिवस्     | ६३    |
| इ       |       | ऋ          |       |
| इतर     | १०६   | ऋत्विज्    | ६४    |
| इदम्    | ११६   | ऋभुक्षिन्  | ८१    |
| ईदृश्   | ८६    | ए          |       |
| उ       |       | एक         | १२२   |
| उखासस्  | ६३    | एकतर       | १०६   |
| उत्तर   | ११०   | एतद्       | ११५   |
| उत्सुह् | १००   | एतीदृश्    | ८६    |
| उदक्    | १०४   | एनस्       | ६५    |
| उदच्    | ६२    | क          |       |
|         |       | ककुभ्      | ८४    |



| शब्द         | पृष्ठ | शब्द           | पृष्ठ |
|--------------|-------|----------------|-------|
| कतम          | १०८   | कृष्ण          | १८    |
| कतर          | १०८   | कुञ्ज्         | ६२    |
| कतिपय        | ११०   | क्रोष्टु       | ४४    |
| कनीयस्       | ६४    | क्लेदन्        | ७२    |
| कन्या        | २३    | क्षत्तृ        | ५३    |
| कप्          | ८३    | ग              |       |
| कमण्डलू      | ४६    | गच्छत्         | ६६    |
| कर्त्तृ      | ५३    | गिर्           | ८५    |
| कर्त्री      | ४०    | गुग्गुलू       | ४६    |
| कर्मन्       | ७७    | गुडलिह्        | ६६    |
| कर्षू        | ४८    | गुरु           | ४४    |
| कामं         | १६    | गृह            | २१    |
| कारभू        | ४७    | गो             | ५७    |
| काष्ठमिद्    | ७०    | गोजा           | २३    |
| किम्         | १३३   | गोदुह्         | ६८    |
| किंशोरी      | ४०    | गोमत् (गोमान्) | ७०    |
| कीदृश-कीदृङ् | ८६    | गोषा           | २३    |
| कीलालपा      | २३    | ग्रन्थं        | १८    |
| कुमारघातिन्  | ७६    | ग्रामणी        | ३७    |
| कुमारी       | ३८    | ग्लौ           | ५८    |
| कुर्वत्      | ६६    | घ              |       |
| कुडु         | ४६    | घट             | १८    |
| कूपला        | २३    | घृतपादन्       | ७२    |
| कृति         | ३६    | घतस्निह्       | १०६   |

| शब्द      | पृष्ठ | शब्द            | पृष्ठ |
|-----------|-------|-----------------|-------|
| घृतस्पृश  | ८६    | तद्             | ११४   |
| च         |       | तनु             | ४६    |
| चतसृ      | ५५    | तन्त्री         | ४१    |
| चतुर्     | ८६    | तरी             | ४१    |
| चन्द्रमस् | ६०    | तस्थिवस्        | ६४    |
| चंमू      | ४६    | तादृश् (तादृङ्) | ८६    |
| चरम       | ११०   | तालु            | ४५    |
| चर्मन्    | ७७    | तिप्            | ८३    |
| चिरण्टी   | ४०    | तिस्            | ५५    |
| छ         |       | तुर्            | ८६    |
| छादिसृ    | ६७    | तूर्            | ८६    |
| छाया      | २६    | तृपत्           | ६८    |
| ज         |       | त्यद्           | ११२   |
| जंतु      | ४५    | त्यादृश्        | ८६    |
| जनिमन्    | ७२    | त्रपु           | ४५    |
| जन्मन्    | ७७    | त्रि            | ८७    |
| जरा       | २६    | त्रितय          | ११०   |
| जल        | २१    | त्रिण्डुम्      | ८५    |
| जातवेदस्  | ६०    | त्व             | १०६   |
| जातु      | ४५    | त्वच्           | ६०    |
| जामातृ    | ५२    | त्वष्टृ         | ५३    |
| जाया      | २६    | त्विष्          | ६७    |
| जूर       | ८६    |                 |       |
| ज्योतिसृ  | ६६    |                 |       |
| त         |       |                 |       |
| तक्षन्    | ७२    | दक्षिण          | ११०   |



| शब्द           | पृष्ठ | शब्द            | पृष्ठ |
|----------------|-------|-----------------|-------|
| दण्डिन्        | ७६    | धुर्            | ८६    |
| दधि            | ३३    | धूलि            | ३६    |
| दधिक्रा        | २३    | धृति            | ३६    |
| दध्यच्         | ६०    | धेगु            | ४५    |
| दन्त           | १०२   | ध्वाङ्क्षराविन् | ७६    |
| दर्द्र         | ४६    | न               |       |
| दशन            | ८१    | नखच्छिद         | ७०    |
| दिव्           | ८८    | नदी             | ४०    |
| दिश्           | ८६    | ननान्द          | ५५    |
| दुहित          | ५५    | नप्त            | ५३    |
| दृन्मू         | ४७    | नवन्            | ८१    |
| दृश्           | ८६    | नामन्           | ७७    |
| दृषद्          | ७०    | नासिका          | १०३   |
| दोष            | १०४   | निशा            | १०४   |
| द्रविणोदस्     | ६०    | नृ              | ५२    |
| द्वि           | १२३   | नृचक्षस्        | ६१    |
| द्वितय         | ११०   | नेम             | ११०   |
| ध              |       | नेष्ट           | ५३    |
| धन             | १६    | नोधस्           | ६३    |
| धनवत् (धनवान्) | ७०    | नौ              | ५८    |
| धनिन्          | ७६    | न्याय           | १६    |
| धनुस्          | ६६    | प               |       |
| धरिमन्         | ७१    | पचत्            | ६६    |
| धर्म           | २१    | पञ्चन्          | ८१    |

| शब्द          | पृष्ठ | शब्द              | पृष्ठ |
|---------------|-------|-------------------|-------|
| पट            | १८    | पुरुष             | ६     |
| पठत्          | ६६    | पुरोडाश (पुरोडाः) | ६६-६७ |
| परिडतुम्हनिन् | ७६    | पुरोधस्           | ६०    |
| पति           | २६    | पुर्              | ८६    |
| यथिन्         | ८१    | पूर्व             | ११०   |
| पपिवस्        | ६४    | पूषन्             | ७३    |
| पपी           | ४१    | पृषत्             | ६६    |
| पपीवस्        | ६४    | पोतृ              | ५३    |
| पयस्          | ६४    | प्रजा             | २६    |
| पर            | ११०   | प्रतिदिवन्        | ८१    |
| परमार्थ       | १६    | प्रतिपद्          | ७०    |
| परमेश्वर      | १८    | प्रत्यच्          | ६०    |
| परिज्मन्      | ७२    | प्रथम             | ११०   |
| परिभू         | ४६    | प्रथमजा           | २३    |
| परित्राज्     | ६५    | प्रथिमन्          | ७२    |
| परीणह्        | १००   | प्रभु             | ४४    |
| पर्याध्वस्    | ६३    | प्रशास्त्         | ५३    |
| पात्र         | २१    | प्राच्            | ६०    |
| पाथसं         | ६५    | प्राह्            | ६३    |
| पाद           | १०२   | प्रावृषं          | ६७    |
| पामन्         | ७७    | प्रियचतुर्        | ८७    |
| पितृ          | ४६    | प्लीहन्           | ७२    |
| पुनर्भू       | ४७    |                   |       |
| पुरुदंशस      | ६१    | वर्हिस्           | ६६    |



| शब्द                     | पृष्ठ | शब्द       | पृष्ठ |
|--------------------------|-------|------------|-------|
| बल                       | २१    | मज्जन      | ७२    |
| बहुपूषन् (बहुपूषाणि)     | ७३    | मथिन्      | ८१    |
| बह्वर्यमन् (बह्वर्यमाणि) | ७३    | मध्वच्     | ६०    |
| बुद्धि                   | ३६    | मनस्       | ६५    |
| बृहत्                    | ६६    | मरुत्      | ६५    |
| ब्रह्मद्विष्             | ६७    | महत्       | ६६    |
| ब्रह्मन्                 | ७८    | महिम्न     | ७२    |
| ब्रह्मयन्धू              | ४८    | मातरिश्वन् | ७२    |
| ब्रह्मवादिन्             | ७६    | मातृ       | ५५    |
| ब्राह्मणी                | ४०    | माया       | २६    |
| भ                        |       | मास        | १०३   |
| भवते                     | १३३   | मित्रद्रुह | १००   |
| भसद्                     | ७०    | मिप्       | ८३    |
| भस्मन्                   | ७७    | मूर्द्धन्  | ७२    |
| भानु                     | ४४    | मेधा       | २६    |
| भुरिज्                   | ६५    | मोक्ष      | १६    |
| भुर्                     | ८६    | म्रदिमन्   | ७२    |
| भूमि                     | ३६    | य          |       |
| भूयस्                    | ६५    | यकृत्      | १०४   |
| भूरिदावन्                | ७२    | यजुस्      | ६६    |
| भ्रातृ                   | ५२    | यज्ञनी     | ३७    |
| भ्रूणहन्                 | ७८    | यज्वन्     | ७२    |
| म                        |       | यद्        | ११४   |
| मघवन्                    | ७४    | ययी        | ४१    |

| शब्द            | पृष्ठ | शब्द                   | पृष्ठ |
|-----------------|-------|------------------------|-------|
| यवभृज्          | ६५    | व                      | ६५    |
| यवमत् (यवमान्)  | ७०    | वचस्                   | ६५    |
| यवीयस्          | ६४    | वणिज्                  | ६५    |
| यात्            | ५५    | वधू                    | ५६    |
| यादृश् (यादृङ्) | ८६    | वधूटी                  | ४०    |
| युज्            | ६५    | वन                     | २१    |
| युवन्           | ७४    | वपुस्                  | ६६    |
| युष्मद्         | १२३   | वयोधस्                 | ६१    |
| यूष्            | १०४   | वर्षाभू                | ४७    |
| र               |       | वस्तु                  | ४५    |
| रज्जु           | ४६    | वल्गु                  | २१    |
| रवि             | २६    | वह्नि                  | २६    |
| राजन्           | ७१    | वाच्                   | ५६    |
| रुचि            | ३६    | वापि                   | ३६    |
| रुष्            | ६७    | वामोरू                 | ४६    |
| रेणु            | ४६    | वायु                   | ४३    |
| रै              | ५६    | वारि                   | ३१    |
| रोमन्           | ७७    | विद्यावत् (विद्यावान्) | ७०    |
| रोहित्          | ६८    | विद्वस्                | ६२    |
| ल               |       | विपद्                  | ७०    |
| लक्ष्मी         | ४१    | विपुष्                 | ६७    |
| लघद्            | ६८    | विभु                   | ४४    |
| लिश             | ८६    | विराज्                 | ६५    |
| लोमन्           | ७७    | विश्                   | ८६    |



| शब्द               | पृष्ठ | शब्द                 | पृष्ठ |
|--------------------|-------|----------------------|-------|
| विश्व              | १०८   | शरिमन्               | ७२    |
| विश्वप्सन्         | ७२    | शर्मन्               | ७७    |
| विश्वभोजस्         | ६०    | शस्त्र               | २१    |
| विश्वभ्राज्        | ६५    | शिष                  | १८    |
| विश्वयशस्          | ६०    | शीर्षघातिन्          | ७६    |
| विश्वराज्          | ६५    | शुच्                 | ६०    |
| विश्ववेदस्         | ६०    | शुश्रुवस्            | ६४    |
| वृक्ष              | १८    | शोचिस्               | ६६    |
| वृत्रहन्           | ७७    | श्मश्रु              | ४५    |
| वृषन्              | ७२    | श्मश्रू              | ४६    |
| वेद                | १६    | श्री                 | ४१    |
| वेदविद्            | ७०    | श्रुति               | ३६    |
| वेदि               | ३५    | श्रेयस्              | ६४    |
| वेधस्              | ६१    | श्वन्                | ७४    |
| वेहत्              | ६८    | श्वेतवाह् (श्वेतवाः) | ६६-६७ |
| व्यवहा             | १६    | ष                    |       |
| व्योमन्            | ७७    | षष्                  | ६८    |
| श                  |       | स                    |       |
| शक्नु              | १०४   | संश्चत्              | ६८    |
| शक्मन्             | ७२    | संहितोरू             | ४६    |
| शत्रु              | ४४    | सक्थि                | ३३    |
| शत्रुघ्न (शत्रुहा) | ७३    | सखि                  | ३०    |
| शप्                | ८३    | सदृश (सदृक्)         | ८६    |
| शरद्               | ७०    | सप्तन्               | ८१    |

| शब्द       | पृष्ठ | शब्द           | पृष्ठ |
|------------|-------|----------------|-------|
| सम         | ११०   | सेनानी         | ३६    |
| सम्पद्     | ७०    | सोमपा          | २१    |
| सम्राज्    | ६५    | सोमयाजिन्      | ७६    |
| सरद्       | ६८    | स्तरी          | ४१    |
| सरयु       | ४६    | स्त्री         | ४०    |
| सरस्वती    | ४०    | स्थण्डिलशायिन् | ७६    |
| सर्पिस्    | ६६    | स्थामन्        | ७२    |
| सर्व       | १०६   | स्नेहन्        | ७२    |
| सलिल       | २१    | स्मृति         | ३६    |
| साधुकारिन् | ७६    | सुच्           | ६०    |
| सामन्      | ७६    | स्व            | १११   |
| सिम        | ११०   | स्वतवल्        | ६५    |
| सीमन्      | ७७    | स्ववस्         | ६५    |
| सुत्रामन्  | ७२    | स्वस्          | ५६    |
| सुदामन्    | ७२    | स्वादु         | ४५    |
| सुधर्मन्   | ७२    |                |       |
| सुधी       | ३७    | हरित्          | ६८    |
| सुधीषुन्   | ७२    | हर्त्तृ        | ५३    |
| सुषर्वन्   | ७२    | हविस           | ६६    |
| सुप्       | ८३    | हानि           | ३६    |
| सुमनस्     | ६४    | हृदय           | १०३   |
| सुशर्मन्   | ७२    | होतृ           | ५३    |
| सेदिवस्    | ६४    |                |       |

[ शब्द संख्या ४३५ ]





# नामिकशुद्धिपत्रम्

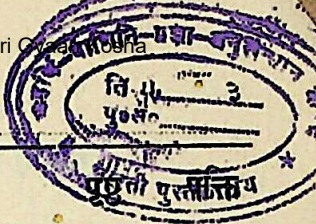
| अशुद्ध          | शुद्ध           | पृष्ठ | पंक्ति |
|-----------------|-----------------|-------|--------|
| नागिक्के        | उपोद्धातः       | ३     |        |
| बहुल            | बहुलं           | १४    | १४     |
| अय              | अय्             | १७    | २१     |
| धम्म            | धर्म            | १६    | १      |
| हलङ्ग्यान्भ्यो० | हलङ्ग्यान्भ्यो० | २३    | २३     |
| (एङ्हस्वा०)     | (एङ्हस्वा०)     | २६    | ३      |
| मति शब्द        | पति शब्द        | ३१    | ५      |
| यण              | यण्             | ३५    | १५     |
| 'आट'            | 'आट'            | ३६    | २१     |
| इकारान्तविषयः   | ईकारान्तविषयः   | ४१    |        |
| ह्रस्व          | ह्रस्व          | ४१    | २३     |
| 'भ्र'           | 'भ्र'           | ४२    | ५      |
| उवङ्            | उवङ्            | ४२    | ६      |
| (मुम०...नट्)    | (नुम०...नुट्)   | ४५    | २०     |
| वर्षाभुवि       | वर्षाभि         | ४७    | १५     |
| यण, उवङ्        | यण्, उवङ्       | ४८    | १७     |
| दर्द            | दर्द            | ४६    | ६      |
| क्षत्           | क्षत्           | ४६    | १४     |
| क्षत्होत्       | क्षत्होत्       | ५३    | ६      |
| होत्            | होत्            | ५३    | १४     |

## नामिकशुद्धिपत्रम्

| अशुद्ध              | शुद्ध               | पृष्ठ | पंक्ति |
|---------------------|---------------------|-------|--------|
| द्वितीया            | द्वितीया            | ५४    | ६      |
| हे कर्त्तृणि        | हे कर्त्तृणि        | ५४    | ६      |
| प्राक्पु            | प्राक्पु            | ६१    | १६     |
| क् को ग             | क् को ग्            | ६१    | २४     |
| उद इत् ॥            | उद ईत् ॥            | ६२    | ६      |
| कुञ्च               | कुञ्च्              | ६२    | २३     |
| तुक                 | तुक्                | ६३    | १६     |
| प्राट्सु            | प्राट्सु            | ६४    | ३५     |
| ऋत्विकषु            | ऋत्विकषु            | ६५    | २      |
| म                   | में                 | ६७    | १५     |
| पुरोडाश्च           | पुरोडाश्च           | ६७    | १६     |
| अ० ६।३।१० ॥         | अ० ६।४।१० ॥         | ६६    | १३     |
| दृषद्               | दृषद्               | ७०    | १२     |
| अल्लोप              | अल्लोप <sup>३</sup> | ७१    | ५      |
| अ० ६।१।१७ ॥         | अ० ६।१।१०८ ॥        | ७४    | १३     |
| ऋकारान्तविषयः       | नकारान्तविषयः       | ७५    |        |
| कर्मन्              | कर्मन्              | ७७    | ३      |
| 'अष्ट+जस्'          | 'अष्टा+जस्'         | ८०    | २      |
| ऋकारान्तविषयः       | पकारान्तविषयः       | ८३    |        |
| 'अप+मिस्'           | 'अप्+मिस्'          | ८४    |        |
| (खरवसानयोर्विसर्ज०) | (खरवसानयोर्विसर्ज०) | ८५    | १६     |
| (अत्वसन्तस्य०)      | (अत्वसन्तस्य०)      | ८७    | १६     |
| 'यवीवस्+सु'         | यवीयस्+सु'          | ८४    | ७      |
| सर्पिस्             | सर्पिस्             | ८६    | ३      |



## नामिकशुद्धिपत्रम्



अशुद्ध

शुद्ध

|                  |                  |     |    |
|------------------|------------------|-----|----|
| गुडलिह           | गुडलिह           | ६६  | १६ |
| घ को             | घ को             | ६६  | २० |
| वाडुह् मुह्णुह्० | वाडुह् मुह्णुह्० | १०० | ३  |
| (वसुखंसु०)       | (वसुखंसु०)       | १०१ | २० |
| दन्नासज्०        | दन्नासज्०        | १०२ | २  |
| 'पद+शस्'         | 'पद+शस्'         | १०२ | १५ |
| अधात्            | अर्थात्          | १११ | ६  |
| द्वाभ्याम्       | द्वाभ्याम्       | १२३ | ८  |
| [ स्त्रे०        | [ स्त्रै०        | ११३ | २१ |
| अ० ७। ८। ६३ ॥    | अ० ७। २। ६३ ॥    | १२५ | ५  |
| ब्दों            | शब्दों           | १२८ | १७ |



## आर्यसमाज के नियम

- १—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने-जाते हैं ।  
सब का आदिमूल परमेश्वर है ।
- २—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्बिकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।
- ३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है ।
- ४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।
- ५—सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।
- ६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य, है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।
- ७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये ।
- ८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।
- ९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति सम्मिलनी चाहिये ।
- १०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥





# वैदिक पुस्तकालय के पुस्तकों की सूची

|                                |     |                                  |    |
|--------------------------------|-----|----------------------------------|----|
| ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मूल्य     | २॥  | विवाहपद्धति                      |    |
| " केवल संस्कृत                 | १)  | शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद           |    |
| अष्टाध्यायी मूल                | ॥=) | शास्त्रार्थ काशी                 |    |
| अष्टाध्यायी भाष्य पहिला खण्ड   | ३॥) | वेदविरुद्धमतखण्डन                |    |
| " दूसरा खण्ड                   | ३॥) | वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी      |    |
| पंचमहायज्ञविधि                 | ≡)  | " अंग्रेज़ी                      |    |
| संस्कृतवाक्यप्रबोध             | ≡)॥ | अन्तिविवरण                       |    |
| व्यवहारभानु                    | ≡)  | स्वमन्तव्याप्तन्तव्यप्रकाश नागरी |    |
| भ्रमोच्छेदन                    | =)॥ | " अंग्रेज़ी                      |    |
| अनुभ्रमोच्छेदन                 | -)  | ऋग्वेदसंहिता सजिल्द              |    |
| सत्यधर्मविचार (मेला चांदापूर)  | १)  | अथर्ववेद संहिता सजिल्द           |    |
| आर्योद्देश्यरत्नमाला नागरी     | )॥॥ | यजुर्वेद संहिता सजिल्द           |    |
| " मराठी                        | -)  | यजुर्वेद मूल गुटका               | १॥ |
| " अंग्रेज़ी                    | -)  | सामवेद संहिता सजिल्द             | १॥ |
| गोकरुणानिधि बादाआकार           | ≡)  | चारों वेदों की अनुक्रमणिका       | २  |
| " छोटाआकार                     | -)  | छान्दोग्योपनिषद् भाष्य           |    |
| स्वामीनारायणमतखण्डन            | १)  | नित्यकर्मविधि                    | )॥ |
| सत्यार्थप्रकाश अजिल्द सादा     | १=) | हवनमन्त्राः                      | १) |
| सत्यार्थप्रकाश " बढिया         | १॥) | Life of Swami Dayanand           |    |
| संक्षेपार्थप्रकाश सजिल्द बढिया | २१) | Saraswati (English) by H         |    |
| आर्याभिविनय गुटका              | १=) | Bilas Sarda Rs. 12/              |    |
| " मोटे अक्षरों की              | ॥॥) | Dayanand Commemor                |    |
| संस्कारविधि                    | ॥=) | tion Volume (English             |    |
|                                |     | superior 10/-                    |    |
|                                |     | Do-artique paper Rs. 5/-         |    |

नोट:—डाकमहसूल सब का मूल्य से अगल होगा। वेद भाष्य, वेदांग प्रकाश एवं अन्य पुस्तकों के लिये सूचीपत्र देखिये या पत्र लिखिये।

प्रबन्धकर्ता













